संत कबीर साहिब

संत महात्माओं का जीवन-चरित संग्रह

महात्मा कबीर साहेब का जीवन-चरित्र

संसार का कुछ ऐसा नियम सदा से चला आया है कि किसी महापुरुष के जीवन समय में बहुत कम लोग इस बात के जानने की परवाह करते हैं कि वे कहाँ पैदा हुए, कैसी उनकी रहनी गहनी है, क्या उनमें विशेष गुण है और क्या गुप्त भेद मालिक और रचना का प्रकाश करने और परमार्थ का लाभ देने के लिये उन्होंने जीवन धारन किया है। लेकिन जब वे इस पृथ्वी को छोड़ देते हैं और उनका अद्भुत तेज जिससे संसार के तिमिर हटाने का लाभ प्राप्त होता था गुप्त हो जाता है तब बहुत से लोग नींद से जाग उठते हैं और उन महापुरुष के सम्बन्ध में अपनी बुद्धि के अनुसार तरह तरह की कल्पनायें करने लगते हैं और बहुत सी बातें बढ़ावे के साथ या नई गढ़ कर मशहूर करते हैं। इन्हीं कारनों से प्राचीन महात्माओं का विशेष कर उनका जिनकी बाबत उनके समय के लोगों ने कुछ नहीं बयान किया है ठीक ठीक जीवन-चारित्र लिखना बहुत कठिन हो जाता है।

कबीर साहेब का जीवन-चरित्र भी इन्हीं कारनों से ठीक रीति से नहीं लिखा जा सकता परन्तु जहाँ तक मालूम हुआ वह संक्षेप में नीचे लिखते हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहेब सिकंदर लोदी बादशाह के समय में वर्तमान थे। भक्तमाल और दूसरे ग्रंथों में लिखा है कि सिकंदर लोदी ने कबीर साहेब के मरवा डालने का यत्न किया था, इस बात का इशारा कीन साहेब की पुस्तक "टेक्स्ट बुक आव इण्डियन हिस्टरी" में भी किया है।

"कबीर कसौटी" नाम की पुस्तक में एक साखी इस प्रकार की है :—

पन्द्रह सौ पचहत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघसुदी एकादशी, रलो पौन में पौन॥

इसके अनुसार विक्रम सम्वत १५७५ अर्थात् सन् १५१९ ईसवी में कबीर साहेब का देहान्त हुआ। सिकंदर लोदी १५१० ईस्वी में मरा था। इससे पक्का अनुमान होता है कि कबीर साहब सिकंदर लोदी के समय में थे। "कबीर कसौटी" में कबीर साहेब की अवस्था देहान्त के समय १२० बरस की होना

लिखा है यदि यह ठीक है तो कबीर साहेब का जन्म सम्वत १४५५ अर्थात् १३९९ ईस्वी में ठहरता है।

कबीर साहेब के पिता का नाम नूरअली और माता का नाम नीमा था जो काशी में रहते थे। किसी का कथन है कि नीमा के पेट से कबीर साहेब पैदा हुए परन्तु विशेष कर ऐसा कहा जाता है कि नूरअली जुलाहा गंगा नदी अथवा लहरतारा तालाब के किनारे सूत धो रहा था कि उसको एक बालक बहता दिखाई दिया उसने उसको निकाल लिया और अपने घर ला कर पाला-पोसा। पंडित भानुप्रताप तिवारी चुनारगढ़ निवासी जिन्होंने इस विषय में बहुत खोज किया है उनके अनुसार कबीर साहेब की असल माँ एक हिन्दू विधवा थी जो सन् १४१४ ई० में रामानंद स्वामी के दर्शन को गई। दंडवत करने पर रामानंद जी ने आशीर्वाद दिया कि तुमको पुत्र हो। स्त्री घबरा कर रोने लगी कि मैं तो विधवा हूँ मुझे पुत्र क्यों कर हो सकता है। रामानंदजी बोले कि अब तो मुँह से निकल गया पर तेरा गर्भ किसी को दिखाई न पड़ेगा। उसी दिन से विधवा को गर्भ रहा और दिन पूरा होने पर लड़का पैदा हुआ जिसे उसने लोक निन्दा के डर से लहरतारा के तालाब में डाल दिया जहाँ से उसे नूरू जुलाहा निकाल कर लाया। कबीर कसौटी के अनुसार जेठ की बड़सायत सोमवार के दिन नीरू ने बच्चे को पाया।

बालपने ही से कबीर साहेब ने बानी द्वारा उपदेश करना आरम्भ कर दिया था। ऐसा कहते हैं कि कबीर साहेब रामानन्द स्वामी के जो रामानुज मत के अवलंबी थे शिष्य हुए। यद्यपि कबीर साहेब स्वतः संत थे और उनकी गति रामानंद स्वामी से कहीं बढ़ कर थी तो भी गुरु धारन करने की मर्यादा कायम रखने को उन्होंने इनको गुरु बना लिया। कहते हैं कि रामानन्द स्वामी को अपने चेले की कुछ खबर भी न थी। एक दिन वह अपने आश्रम में परदे के भीतर पूजा कर रहे थे, ठाकुर जी को स्नान करा के वस्त्र और मुकुट पहिरा दिया परन्तु फूलों का हार पहिराना भूल गये, इस सोच में पड़े थे कि यदि मुकुट उतार कर पहिरावें तो बेअदबी है और मुकुट के ऊपर से माला पहनाने से छोटी पड़ती थी इतने में ड्योढ़ी के बाहर से आवाज़ आई की माला की गाँठ खोल कर पहिरा दो। रामानंद स्वामी चकित हो गये और बाहर निकल कर कबीर साहब को गले लगा लिया और कहा कि तुम हमारे गुरु हो।

कबीर साहेब के रामानन्दजी का शिष्य होने से यह न समझना चाहिए

कि वह उनके धर्म के अनुयायी थे—उनका इष्ट सत्य पुरुष निर्मल चैतन्य देश का धनी था जो ब्रह्म और पारब्रह्म सब से ऊँचा है। उसी की भक्ति और उपासना उन्होंने दृढ़ाई है और अपनी बानी में उसी परम पुरुष और उसके धुन्यात्मक "नाम" की महिमा गाई है और इसके अतिरिक्त जो शब्द कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं वह पूरे या थोड़े बहुत क्षेपक हैं।

कबीर साहेब ने कभी किसी प्रचलित हिन्दू या मुसलमान मत का पक्ष नहीं किया वरन् सभों का दोष बराबर दिखलाया। उनका कथन है :—

हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरत हैं, दुविधा में लिपटाना॥
घर घर मंत्र जो देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरुवा सहित शिष्य सब डूबे, अंत काल पछिताना॥

कहते हैं कि रामानंद स्वामी ने जो कर्मकांड पर भी चलते थे एक बार अपने पिता के श्राद्ध के दिन पिंडा पारने को कबीर साहेब से दूध मँगाया। कबीर साहेब जाकर एक मरी गाय के मुँह में सानी डालने लगे। यह तमाशा देख कर उनके गुरु भाइयों ने पूछा कि यह क्या कर रहे हो। मरी गाय कैसे सानी खायगी? कबीर साहेब ने जवाब दिया कि जैसे हमारे गुरु जी के मरे पुरखा पिंड खायँगे।

मांस, मद्य बरन हर प्रकार के नशे का कबीर साहेब ने अपनी बानी में निषेध किया है।

कबीर साहेब जुलाहा के घर में तो पले थे ही और आप भी कपड़ा बुनने का काम करते थे। वह गृहस्थ आश्रम में थे, और भेषों के डिम्भ पाखंड और अहंकार को बहुत निन्दनीय कहा है। कबीर साहेब की स्त्री का नाम लोई और बेटे और बेटी का कमाल और कमाली था। किसी किसी ग्रंथकारों का कथन है कि कबीर साहेब बालब्रह्मचारी थे और कभी ब्याह नहीं किया, एक मुर्दा लड़के और लड़की को जिला कर उनका नाम कमाल और कमाली रक्खा और उनके पालन का भार लोई को जो उनकी चेली थी सौंप दिया पर यह ठीक नहीं जान पड़ता।

जो कुछ हो लोई कबीर साहेब की सच्ची और ऊँचे दर्जे की भक्त थी। [illegible]र का ज़िकर है कि कबीर साहेब ने किसी खोजी को भक्ति का उदाहरण दिखाने के लिए अपने करगह में जहाँ वह लोई के साथ दोपहर को ताना बुन

रहे थे धीरे से ढरकी अपनी बँहोली में छिपा ली और लोई से कहा कि देख ढरकी गिर गई उसे ज़मीन पर खोज। वह उसे तुर्त ढूँढ़ने लगी। आखिर को हार कर काँपती हुई उसने अर्ज की कि नहीं मिलती। इस पर कबीर साहेब ने जवाब दिया कि तू पागल है रात के समय बिना दिया वाले ढूँढ़ती है कैसे मिले। अपने स्वामी के मुख से यह वचन सुनते ही उसको सचमुच ऐसा दरसने लगा कि अँधेरा है, बत्ती जलाकर ढूँढने लगी जब कुछ देर हो गई कबीर साहेब ने खफ़ा होकर कहा कि तू अंधी है देख मैं ढूँढ़ता हूँ और उसके सामने ढरकी बँहोली से गिरा कर उठा लिया और उसे दिखा कर कहा कि कैसे झटपट मिल गई। इस पर लोई रोकर बोली कि स्वामी छिमा करो न जानें मेरी आँख में क्या पत्थर पड़ गये थे। तब कबीर साहेब ने उस जिज्ञासु से कहा कि देखा यह रूप भक्ति का है कि जो भगवंत कहे वही भक्त को वास्तविक दरसने लगे।

बहुत सी कथायें कबीर साहेब की बाबत प्रसिद्ध हैं जिनका लिखना अनावश्यक है क्योंकि वह समझ में नहीं आतीं। इसमें संदेह नहीं कि भक्तजन सर्व समर्थ हैं और उनके लिए कोई बात असंभव नहीं है पर इसी के साथ यह भी है कि संत करामात नहीं दिखलाते अपने भगवंत की भाँति अपने सामर्थ्य को प्रायः गुप्त रखते और साधारण जीवों की तरह संसार में बर्ताव करते हैं। तौ भी थोड़े से चमत्कार जिनका भक्तमाल और दूसरे ग्रंथों में वर्णन है और महात्मा ग़रीबदास और दूसरे भक्तों ने भी उनको संकेत में अपनी बानी में कहा है नीचे लिखे जाते हैं क्योंकि उन्हें न केवल सर्व साधारन पसंद करेंगे वरन् उन से महात्माओं की बानी जहाँ यह कौतुक इशारे में लिखे हैं भली प्रकार से समझ में आवेंगी।

(१) एक बार काशी के पंडितों ने जो कबीर साहेब से बहुत ईर्षा रखते थे कबीर साहेब की ओर से कंगलों के खिलाने का न्यौता चारों ओर फेर दिया। हज़ारों आदमी कबीर साहेब के द्वार पर इकट्ठा हुए। जब कबीर साहेब को इसकी ख़बर हुई तो एक हाँडी में थोड़ा-सा भोजन बनवाकर और कपड़े से ढाँक कर अपने किसी सेवक से कहा कि हाथ भीतर डाल कर जहाँ तक निकले लोगों को बाँटते जाओ। इस प्रकार से सब न्योतहरी पेट भर कर खा गये और जब कपड़ा उठाया गया तो हाँडी ज्यों की त्यों भरी निकली। इस कथा को ऐसे भी लिखा है कि भगवंत आप बंजारे का रूप धर कर बैलों पर अन्न लादे आ[illegible] कबीर साहेब के ओसारे में गाँज दिया जो सब मँगतों को बाँटने पर भी न चुका।
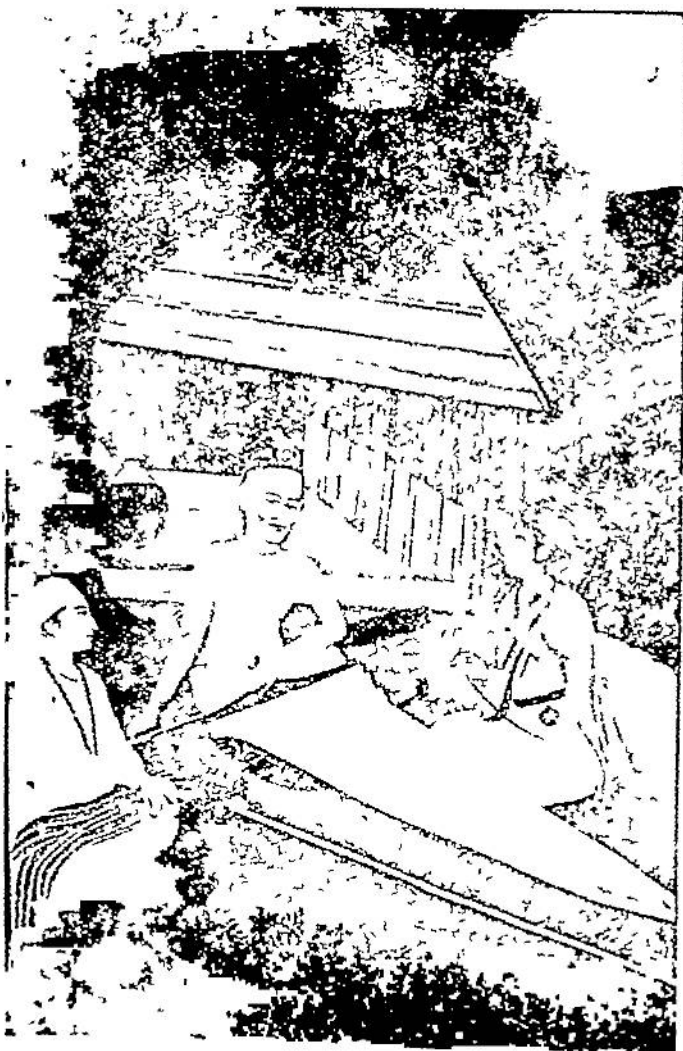
सन्त कबीर

(२) जब कबीर साहेब की सिद्धि शक्ति की महिमा काशी में बहुत फैली और संसारियों की बड़ी भीड़ भाड़ होने लगी तो कबीर साहेब अपनी निन्दा कराकर लोगों से पीछा छुड़ाने के हेतु एक दिन एक हाथ किसी वेश्या के गले में डाल कर और दूसरे हाथ में पानी से भरी बोतल, शराब का धोखा देने को, लेकर बाजार भर घूमे जिससे लोगों ने समझा कि वह पतित हो गये और उनके घर जाना छोड़ दिया।

(३) ऐसा ही रूपक धरे कबीर साहेब काशिराज के दर्बार में पहुँचे वहाँ किसी ने आदर सत्कार न किया। जब दर्बार से लौटने लगे तो थोड़ा सा जल बोतल से धरती पर डाल कर सोच में हो गये। राजा ने सबब पूछा तो जवाब दिया कि इस समय पुरी के मन्दिर में आग लग जाने से जगन्नाथ जी का रसोइया जलने लगा था मैंने यह पानी डाल कर आग बुझा दी और रसोइये की जान बचा ली। राजा ने पुरी से समाचार मँगाया तो वह बात ठीक निकली।

(४) सिकंदर लोदी बादशाह ने कबीर साहेब को मार डालने के लिए सिक्कड़ से बँधवा कर गंगा जी में डलवा दिया, पर न डूबे तब आग में डलवाया पर एक बाल बाँका न हुआ, फिर मस्त हथी उन पर छोड़ा वह भाग गया।

कबीर साहेब के गुरमुख शिष्य जो संत गति को प्राप्त हुए धर्मदास जी* एक प्रसिद्ध वैश्य साहूकार थे। वह पहले सनातन धर्म के अनुयायी थे और ब्राह्मणों की उनके यहाँ बड़ी भीड़ भाड़ रहा करती थी। उनसे कबीर साहेब मिले और संत मत महिमा गाई इस पर धर्मदासजी ने उनका काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ कराया जिसमें यह लोग पूरी तरह परास्त हुए और धर्मदास जी ने कबीर साहेब को गुरु धारन करके उनसे उपदेश लिया और बहुत काल तक उनका सतसंग और सुरत शब्द का अभ्यास करके आप भी संत गति को प्राप्त हुए। उनकी बानी बचन से उनकी गुरु भक्ति, अपूर्व प्रेम और गति विदित होती है।

कबीर साहेब ने मगहर में जो काशी से कुछ दूर बस्ती के जिले में है देह त्याग की। उनके गुप्त होने का समय जैसा कि ऊपर लिख आये हैं सम्वत १५७५ जान पड़ता है। उनके मगहर में शरीर त्याग करने के बहुत से प्रमान हैं, धर्मदास जी ने अपनी आरती में इस भाँति लिखा है।

---

*इनकी बानी ।।।) में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से मगाइए।

अठईं आरती पीर कहाये। मगहर आगी नदी बहाये॥

नाभा जी ने कहा है—

भजन भरोसे आपने, मगहर तज्यो शरीर।
अविनाशी की गोद में, बिलस दास कबीर॥

दादू साहेब का वाक्य है—

काशी तज मगहर गये, कबीर भरोसे नाम।
सन्नेही साहेब मिले, दादू पूरे काम॥

इन के अंत काल के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि हिन्दुओं ने इनके मृतक शरीर को जलाना और मुसलमानों ने गाड़ना चाहा इस पर बहुत झगड़ा हुआ अंत को चादर उठा कर देखा तो मृतक स्थान पर शरीर नदारद था, केवल सुगंधित फूल पड़े थे। तब हिन्दुओं ने फूल लेकर मगहर में उनकी समाधि बनाई और मुसलमानों ने क़बर। यह समाधि और क़बर अब तक वर्तमान हैं और इस बात को जताती हैं कि यह सब वर्ण के झगड़े संतों ने तुच्छ और केवल संसारियों के योग्य विचार कर उन्हीं के लिए छोड़ दिये।

इसमें संदेह नहीं कि कबीर साहेब स्वतः संत थे जिन्होंने संसार में कर्म भर्म मिटाने और सच्चे परमार्थ का रास्ता दिखाने को कलियुग में पहला संत अवतार धरा जैसा कि उनकी बानी वचन से जिसमें पूरा भेद पिंड, ब्रह्मांड और निर्मल चेतन्य देश का दिया है विदित है। इसके प्रमाण में दो शब्द "कर नैनों दीदार महल में प्यारा है" और "कर नैनों दीदार यह पिंड से न्यारा है" (सफ़हा ७६ और ८१ देखिए) काफी हैं—इनमें पूरा भेद सिलसिलेवार दिया है और इनको एक प्राचीन लिपि से लेकर अमृतसर के कबीरपंथी महन्त भाई गुरुदत्त सिंह जी ने भेजा है।

कबीर साहेब की बानी जैसे मधुर, मनोहर और प्रेम से भिनी हुई है उसका असर पढ़ने से मालूम होता है—उससे किसी बड़े से बड़े कवि या विद्वान की बानी का मुक़ाबला नहीं हो सकता क्योंकि संतमुख बानी अनुभवी है और कवियों की बानी विद्या बुद्धि की है।

महात्मा धनी धर्मदासजी का जीवन-चरित्र

धनी धर्मदासजी जाति के कसौंधन बनिये बाँधोगढ़ नगर के भारी महाजन थे। उनके जीवन और मृत्यु के समय का उनके मत वालों या किसी ग्रंथ से ठीक ठीक पता नहीं चलता परन्तु इतना पक्का है कि कबीर साहेब से इनकी अवस्था कम थी और उनके पन्द्रह बीस बरस पीछे चोला छोड़ा। इस हिसाब से उनके जन्म का समय विक्रमी सम्वत् १४७५ और १५०० के दर्मियान और परमधाम सिधारने का समय सम्वत् १६०० के करीब समझना चाहिए क्योंकि उन्होंने पूरी अवस्था को पहुँच कर शरीर त्याग किया।

धर्मदासजी बाल अवस्था ही से बड़े धर्मात्मा और भगवत भक्त थे परन्तु आदि में पुराने कर्म धर्म और मूर्त्ति पूजन के बँधुए थे। सैकड़ों पंडितों और पुजारियों और साधुओं की उनके यहाँ सदा भीड़ भाड़ लगी रहती थी और अपना मुख्य समय ठाकुर की मूरत और शालिग्राम की पूजन और ब्राह्मणों और साधुओं के खिलाने पिलाने और आदर सत्कार और कथा कीर्त्तन में खर्च करते थे और दूर दूर के तीर्थों में दर्शन और यात्रा कर आये थे।

जब धर्मदासजी के चेतने का समय आया तब सतगुरु कबीर साहब पहिले उनसे मथुरा में मिले और रास्ते में चरचा मूर्त्ति पूजन और तीर्थ व्रत के खंडन और संतमत के मंडन कि की। कुछ दिन पीछे धर्मदासजी काशी यात्रा को आये तब कबीर साहब के फिर दर्शन मिले और जो कुछ संशय भर्म धर्मदासजी के मन में बाकी रह गये थे उनको कबीर साहेब ने पूरी भाँति मिटा दिया और इसके पीछे संतमत का उपदेश देकर दया दृष्टि से उनके घट के पट खोल दिये। "अमर सुख निधान" ग्रन्थ में कबीर साहेब और धर्मदासजी की गोष्टी विस्तार के साथ लिखी है—उसकी थोड़ी सी कड़ियाँ जिनमें धर्मदासजी के कबीर साहेब का दर्शन पाने और फिर काशी में शरण लेने का वर्णन है नीचे लिखे जाते हैं।

॥ रमैनी ॥

(जिन्द)

चौपाई—कहैं कबीर मैं काया सोधा। जो जस बूझि ताहि तस बोधा ॥
अपने घट में कीन्ह बिचारा। देखौं धरमदास दरबारा ॥

धरमदास बंधो के बानी[1] । प्रेम प्रीति भक्ती में जानी ॥
सालिगराम की सेवा करई । दया धरम बहुतै चित धरई ॥
साधु भक्त के चरन पखारै । भोजन कराइ अस्तुति अनुसारै ॥
भागवत गीता बहुत कहाई । प्रेम भक्ति रस पियै अघाई ॥
मनसा वाचा भजै गोपाला । तिलक देइ तुलसी की माला ॥
द्वारिका जगन्नाथ होइ आये । गया बनारस गंगा न्हाये ॥
बोलत वचन सत्त सुभ बानी । वृथा कहै कबहूँ ना जानी ॥

दोहा—राम कृष्न को सूमिरे, तीरथ व्रत दृढ़ चेट[2] ।
मथुरा परसत जब गये, भे कबीर सों भेंट ॥

चौपाई—जिंद[3] रूप जब धरे सरीरा । धरमदास मिलि गये कबीरा ॥
उदित बदन मुदित सुख चैना । हँस मुसुकाय कहे मुख बैना ॥
धरमदास तुम हौ बड़ ज्ञानी । परम भक्त भक्ती में जानी ॥
तुम सा भक्त न देखौं आना । धर्म तुम्हारा कवन स्थाना ॥
कवन दिसा से तुम चलि आये । जैहौ कहाँ कहा मन लाये ॥
काकी भक्ति करौ चित लाई । सो कित बसै कौन से ठाँई ॥
पूछत मन में दुख जनि मानो । करता आदि पुरुष पहिचानो ॥
का भे माला तिलक के दीन्हे । का भे तीरथ वरत के कीन्हे ॥
का भे सुनत भागवत गीता । चिन्ता मिटी न मन को जीता ॥

दोहा—जेहि कर्ता से ऊपजे, सो बसे कौने देस ।
ताहि चीन्ह परिचय करो, छोड़ सकल भ्रम भेस ॥

(धर्मदास जी)

चौपाई—सुनि धर्मदास अचंभो भयऊ । ऐसो वचन काहु ना कहेऊ ॥
जिंद रूप इन हीं के देखा । कहत वचन सुख बहुत बिबेका ॥
सुनो जिंद मोरे दृढ़ ज्ञाना । बास मोर बंधो अस्थाना ॥
बरन कसौंधन जाति को बानी । भजौं राम कृष्न सारँग पानी ॥
पारब्रह्म सेवौं चित लाई । सीताराम जपौं सुखदाई ॥
सेवौं सालिगराम के पाऊँ । अर्द्ध-मुखी[4] सच्ची लव लाऊँ ॥
सकल भक्त के रहौं अधीना । गुरु सेवा जिन दिच्छा लीन्हा ॥
बिरथा वचन सुनौं ना कहऊँ । प्रेम भक्ति में निस दिन रहऊँ ॥

---

(१) बंधोगढ़ निवासी बनिये । (२) चेष्टा । (३) जिन । (४) सिर झुका कर ।

दोहा—मोरे संका कछु नहीं, सेवों श्रीरघुनाथ।
(जिन) ध्रू प्रहलाद उबारिया, सो हरि हमरे साथ॥

(जिंद)

मैं हौं जिंद सुनु वचन हमारा। तुम जनि होहु काल कै चारा॥
राम नाम सब दुनी पुकारे। राम अगिन जो काठै जारे॥
काहे न सुरति करौ घट माहीं। चीन्ह चीन्ह बूड़ौ भव माहीं॥
जिन्हैं कहत हौ नंद के लाला। सो तो भये सबन के काला॥
छल बल करि वे सब छलि डारे। पांडव जाइ हिवारे गारे॥
पांडव सम को भक्त कहावा। तिनहुँ को काल बली भरमावा॥
दसरथ सुत कहिये श्रीरामा। तिनहूँ चीन्हौ काल अकामा॥
करता राम कस भे मति-हीना। कपट मृगा उनहूँ नहिं चीन्हा॥

दोहा—दोउ करता बिरतंत है, कीन्हे जम के काम।
जीव अनेक प्रलय किये, ऐसे कृष्न अरु राम॥

चौपाई—धर्मदास है नाम तुम्हारा। काहे न चीन्हौ वचन हमारा॥
ज्ञान दृष्टि से चीन्हौ बानी। पाखँड पाहन पाखँड पानी॥
करता पाखँड कबहुँ न होई। यह संसय सब दुनी बिगोई॥
सालिगराम है बोलनहारा। देह सरूप तन साजि हमारा॥
धर्मदास सुनि चीन्हेउ ज्ञाना। हित के वचन सुनत मन माना॥
कोइ करता कहिये भगवाना। नाम मोर इन कैसे जाना॥
इन कर वचन ज्ञान औगाहा[१]। जिंद भेष धारे कोउ आहा॥
थापै सालिगराम न सेवा। तीरथ बरत कौ मेटै भेवा॥
राम कृष्न को मेट बताना। अहै जिंद को कैसो ज्ञाना॥

दोहा—धर्मदास मस्टी[२] रहे, बहुत खोज नहिं कीन्ह।
सीधा[३] लै डेरे गये, जिंद उत्तर[४] नहिं दीन्ह॥

चौपाई—इतना गुष्ट बजार में कीन्हा। आप दुकान में डेरा लीन्हा॥
धर्म्मदास पहुँचे निज डेरा। मन महँ सोच कीन्ह बहुतेरा॥
बारह बरस तीर्थ हम कीन्हा। द्वारिका जाइ छाप हम लीन्हा॥
श्रीनाथ परसे चित लाई। राम नाथ दक्खिन होइ आई॥
दक्खिन परस गोदावरि गयेऊ। मेला भरो दरसन तहँ कियेऊ॥

(१) [illegible]। (२) मौन, चुप। (३) भोजन की सामग्री। (४) जवाब।

परसि सिवाला औ हरिद्वारा। नीमषार मिस्र पग धारा ॥
बद्रीनाथ दुवारे गयेऊ। श्रीबिंद्राबन मथुरा अयेऊ ॥

दोहा—मकर त्रिवेनी परसेहू, औ कासी अस्थान।
औरौ परसे जगन्नाथ, गंगासागर किये अस्नान ॥

चौपाई—इतने तीर्थ छेत्र हम धाये। यह दुसरे हम मथुरा आये ॥
राम नाम निज प्रान अधारा। सो यह जिंद मेटि सब डारा ॥
कीजे कहा जिंद को भाई। जाति मलेच्छ कथै चतुराई ॥
धरमदास जब नफर[1] बुलावा। घर लिपाय ज्योनार चढ़ावा ॥
चौका बैठि कीन्ह अस्नाना। छानि छानि जल अदहन दीन्हा ॥
अति पवित्र से करै रसोई। सालिगराम कै भोजन होई ॥
लकड़ी चिउँटी उठीं अपारा। कोटिन जीव भये जरि छारा ॥

दोहा—धरमदास को दुख भयो, हरि हरि करत पुकार।
जीव अनेक प्रलय भये, अस ज्योनार धिक्कार ॥

चौपाई—लकड़ी काढ़ि जल माहिं बुझाई। चूल्हा बुझायो बहु जल लाई ॥
जो कछु जरे सो जरिगे भाई। जो बाचे सो लेहु बचाई ॥
नफर हाथ जिंद बुलवाई। यह भोजन लै जिंदहि खाई ॥

(जिंद)

धरमदास तुम बड़े सुजाना। जीव दया काहे नहिं जाना ॥
कीन्हा नेम अनेक अचारा। लकड़ी धोई रचे ज्योनारा ॥
निरखि निरखि तुम काहे न बीना। नाम तोरि देवतन कहि दीन्हा ॥
जौलौं जीव दया नहिं आवै। तीरथ भरमि के जनम गँवावै ॥
दसरथ सुत श्रीराम कहाये। तिनहूँ अपने जिव संताये ॥

दोहा—बैर बालि के हतन को, बिष्नु देह धरि दीन्ह।
जो जो जिव मारे हते, तिन तिन बदला लीन्ह ॥

चौपाई—बचन हमार हिये में धरहू। संसय तजि के भोजन करहू ॥
आतम कष्ट कबहुँ ना दीजे। रुचे सो प्रेम से भोजन कीजे ॥
हरि ना मिलैं अन्न के छाँड़े। हरि ना मिलैं डगर ही माँड़े ॥
हरि न मिलैं घरबार तियागे। हरि न मिलैं निसु वासर जागे ॥
दया धरम जहँ बसै सरीरा। तहाँ खोजिले कहैं कबीरा ॥

---

(१) नौकर। (२) पत्तल।

सुनि धर्म्मदास धीर्ज मन कीन्हा। भली सीख जिंद मोहिं दीन्हा ॥
इन कै ज्ञान महा रस बानी। मानो बचन अमी रस सानी ॥
आन प्रसाद पत्र[२] भरि लीन्हा। काढ़ि परोसि के भोजन दीन्हा ॥

दोहा—तुम ले जावो जिंद जी, हम करिबै फरहार।
लंघन न करिहौं पीर जी, मानौं बचन तुम्हार ॥

चौपाई—दै प्रसाद उठि आसन आयेऊ। धरमदास फरहार मँगायेऊ ॥
सालिगराम को अर्पन कीन्हा। पुनि भोजन आपु ही कीन्हा ॥
लिये आचमन अमृत मीठे। आसन करि सुचित्त होइ बैठे ॥
पहर एक हरि चरचा भयेऊ। पुनि निद्रा करने को गयेऊ ॥
रैन सिरानी भयो बिहाना। नफर सहित उठि बाहिर आना ॥
धरमदास बंधो चलि आये। बाल गोपाल मनहि सुख पाये ॥
जिंद बचन जब हिरदे आये। अंतर गत बहुते सुख पाये ॥
आवै फिरि तब दरसन पाऊँ। पूछूँ आदि अंत चित लाऊँ ॥

दोहा—सत्त सत्त सब उन कही, जानि परै मोहिं सार।
जिंद नाहिं कोइ पुरुष है, अस बोलै ब्रह्म हमार ॥

चौपाई—धरमदास मन कीन्ह बिचारा। देवँ महोच्छ करों भंडारा ॥
सीधा सामग्री बहुत मँगाई। भेष भगत तहँ बहुत बुलाई ॥
आये बैरागी औ ब्रह्मचारी। नागबीर आये दूधाधारी ॥
फलाहारी अन्नधारी आये। जोगी जिंद बहु भेष बनाये ॥
बहुत आये तपसी सन्यासी। जटा भभूत सुन्न बिस्वासी ॥
बाजै ताल मृदंग निसाना। संख नाद धुनि होइ निधाना ॥
आव भगत सबहिन को कीन्हा। इच्छा भोजन सब को दीन्हा ॥
सब को ज्ञान परख्यो धर्म्मदासा। लख्यो ज्ञान सब को बिनु सारा ॥
कोइ तीरथ कोइ मूर्त्ति बँधावै। कोइ कलि केवल नाम दृढ़ावै ॥
कोइ कृष्न गोपालहिं गावै। कोइ दुर्गा सिव सक्ति धियावै ॥
जोगी अलख अलख उच्चरई। जिंद सुमिरै अल्लाह खोदाई ॥
सन्यासी राम देव ठहराई। परमहंस अविनासी गाई ॥

दोहा—एक बात कोइ ना कहै, नाना मति परचंड।
धर्म्मदास परखे मते, जानि परे पाखंड।

चौपाई—समुझि परौ ऐसो मन माहीं। जिंद का मता काहु सम नाहीं ॥
बरस दिना गिरही में रहेऊ। बहुत सुरत कासी की कियेऊ ॥
धर्म्मदास कासी चलि आये। हृदय हुती सो दरसन पाये ॥
मुक्तिरूप सुख अमृत बानी। नाम कबीर जग्त गुरु ज्ञानी ॥
बिमल बिमल साखी पद गावै। जुरी भीर सबहिन समुझावै ॥
धर्म्मदास तहँ निरखै ठाढ़ा। चंद चकोर जिमि आँखि पसारा ॥
पंडित ज्ञानी सबै हराये। थाह कबीर की कोइ नहिं पाये ॥
धर्म्मदास चीन्हे मन माना। येहि जिंद तजि होय न आना ॥

दोहा—पिरथम मोहिं मथुरा मिले, बहुत बाद हम कीन्ह।
साँच साँच सब उन कही, मन हमार हर लीन्ह ॥

चौपाई—धर्म्मदास हरष मन कीन्हा। बहुरि पुरुष मोहिं दरसन दीन्हा ॥
अपने मन में कीन्ह बिचारा। इनकर ज्ञान महा टकसारा ॥
दोइ दीन के करता कहाई। इनकर भेद कोउ नहिं पाई ॥
इतना कहि मन कीन्ह विचारा। तब कबीर उन ओर निहारा ॥
आओ भक्त महाजन पगु धारो। चिहुँकि चिहुँकि तुम काह निहारो ॥
कहिये छिमा कुसल हौ नीके। सुरत तुम्हार बहुत हम झींके ॥
धर्म्मदास हम तुम को चीन्हा। बहुत दिनन में दरसन दीन्हा ॥
बहुत ज्ञान कहसी हम तुमहीं। बहुरि के अब तुम चीन्हो हमहीं ॥
तुम तो भक्त हम जिंद फकीरा। सुधि करि देखो सत मत धीरा ॥

दोहा—भली भई दरसन मिले, बहुरि मिले तुम आय।
जो कोई मोसे मिलै, ते जुग बिछुरि न जाय ॥

चौपाई—सुनि धर्म्मदास हिये सुख भरे। सन्मुख धाइ पाँव जा परे ॥
दया सिन्धु चितये भरि नैना। उठि धर्म्मदास अंक भरि लीन्हा ॥
धर्म्मदास कबीर भे भेंटा। सत्त सब्द के खुले कपाटा ॥
परगट ज्ञान ध्यान की खानी। सत्त सब्द निज अमृत बानी ॥
जो कोइ सुनै चेत चित लाई। संसय टरै पाप छय जाई ॥

तुलसी साहेब के ग्रंथ घटरामायन में लिखा है कि कबीर साहेब काशी में धर्म्मदास जी के घर गये जब वह मूर्त्ति पूजा कर रहे थे और बहुत से पंडित और पुजारी जमा थे। कबीर साहेब ने पूछा कि धात की गढ़ी मूरत और पत्थर की मठिया के पूजने का क्या फल है इस पर पुजारी बहुत बिगड़े और

उनको नास्तिक और भला बुरा कह कर निकाल देना चाहा परन्तु धर्म्मदास जी ने रोका और उनसे देर तक चर्चा करते रहे जिससे उनकी कुछ शांति हुई। फिर कबीर साहेब ने मौज से यह चमत्कार दिखलाया कि एक हिचकी लेकर अपने गले से शालग्राम की बटिया निकाल कर धर दी और फिर उसको बुलाया तो वह हाथ पर आ बैठी। यह कौतुक देखकर धर्म्मदासजी के चित्त में पूरी रीति से कबीर साहेब की महिमा बैठ गई और अपनी स्त्री और पुत्रों को भी उनके चरणों पर गिराया। उनकी स्त्री और जेठे पुत्र चूड़ामणि ने तो पूरे भाव से कबीर साहेब की शरण ली और उनको गुरू धारण किया परन्तु छोटे बेटे नारायणदास ने नाक भँव सिकोड़ ली और कबीर साहेब को पाखंडी और जादूगर ठहराया।

इन दोनों कथाओं से संतों के इस बचन का प्रमाण मिलता है कि जब स्वतः संत जगत में पधारते हैं तो अपनी निज अंश अर्थात् गुरुमुख को भी देर सबेर लाते हैं और उसी के द्वारे सारी रचना को पवित्र करते हैं। यद्यपि गुरुमुख को परमार्थ का चाव लड़कपन ही से रहता है, परन्तु पहले माया का पर्दा उस पर पड़ा रहता है—जब समय आता है तब सतगुरु उसे अपने दर्शन और बचन से एक छिन में चेता देते हैं और माया के परदे को हटा देते हैं। जैसे कबीर साहेब पहिले संत अवतार हुए ऐसे ही धनी धर्म्मदासजी पहिले गुरुमुख प्रगट हुए जो कबीर साहेब की दया दृष्टि से संत गति को प्राप्त हुए।

धर्म्मदासजी ने कबीर साहेब की शरण लेने पर अपना सारा धन दौलत लुटा दिया और काशी में गुरु चरणों में रहने लगे। उनके पीछे उनके बड़े बेटे चूड़ामणिजी ने भी वही ऊँचा पद पाया परन्तु नारायणदास संतों की साखी के अनुसार काल के अवतार समझे जाते हैं।

कबीर साहेब के सम्बत् १५७५ में परमधाम को सिधारने के पीछे धर्म्मदास जी को उनकी गद्दी और सब ग्रंथ मिले और वह बहुत बरस तक जगत जीवों को चेताते और संत मत दृढ़ाते रहे। उनके गुप्त होने पर चूड़ामणिजी को गद्दी हुई और सब ग्रंथ मिले सिवाय कबीर साहेब के बीजक के जिसे भागू धर्म्मदासजी के गुरुभाई ने चोरा कर भगवान गोसाँई के हाथ मुक़ाम धनौली ज़िला तिरहुत को भेज दिया और फिर वहाँ अपनी गद्दी अलग क़ायम की।

तुलसी साहिब के उत्पन्न होने का सम्वत् सुरत विलास में नहीं दिया है पर यह लिखा है कि उन्होंने अनुमान अस्सी बरस की अवस्था में जेठ सुदी विक्रमी सम्वत् १८९९ या १९०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह धारण करने का समय सम्वत् १८२० के लगभग ठहरता है। हाथरस में उनकी समाधि मौजूद है, बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं और साल में एक बार भारी मेला होता है।

यद्यपि इनको इस संसार से गुप्त हुए १०० बरस हुए हैं पर उनके अनुयाइयों ने न जाने किस मसलहत से उनके जीवन समय को ऐसी भूल भुलैयों में डाल रक्खा है कि लोग उसे सैकड़ों बरस पहिले समझते हैं। मुंशी देवीप्रसाद साहिब ने भी जो अब इस मत के आचार्य्य कहे जाते हैं घट रामायण की भूमिका में इस भरम को दूर करने की कोशिश नहीं की है। हमने इस मत के कई साधुओं और गृहस्थों से तुलसी साहिब का जीवन समय पूछा तो उन्होंने एकमुँह होकर अब से साढ़े तीन सौ बरस पहिले बतलाया जो कि गोसाईं-तुलसीदासजी जक्त-प्रचलित सर्गुण रामायण के करता का समय है। तुलसी साहिब ने निस्संदेह घट रामायण के अंत में फ़रमाया है कि पूर्व जन्म में आप ही गोसाईं तुलसीदास जी के चोले में थे और तब ही घट रामायण को रचा परन्तु चारो ओर से पंडितों भेषों और सब मत वालों का भारी विरोध देख कर उस ग्रंथ को गुप्त कर दिया और दूसरी सर्गुण रामायण उसकी जगह समयानुसार बना दी। इससे यह नतीजा साफ़ तौर पर निकलता है कि घट रामायण को तुलसी साहिब ने जब दूसरा चोला अनुमान एक सौ चालीस बरस पीछे धारण किया तब प्रगट किया न कि पहिले चोले से। सवाल यह है कि कोई संत तुलसी साहिब के नाम से पिछले सत्तर पछत्तर बरस के अंदर हाथरस में उपस्थित थे या नहीं जो वहाँ सतसंग कराते थे और उपदेश देते थे, और जहाँ उनकी समाधि अब तक मौजूद है? हमको इसमें कोई सदेह नहीं है कि ऐसे महापुरुष अवश्य थे क्योंकि हम आप उनकी समाधि का दर्शन कर आये हैं और दो प्रमाणिक सतसंगी अब तक मौजूद हैं जिन्होंने अपने लड़कपन में तुलसी साहिब के दर्शन किये थे और उनमें से एक को तुलसी साहिब ने अपनी घट रामायण आप दिखलाई थी।

तुलसी साहिब के मत वाले उनकी महिमा समझ कर इस बात पर बड़ा ज़ोर देते हैं कि महाराज ने कोई गुरू धारण नहीं किया और इसके प्रमाण में यह कड़ी पेश करते हैं—

"एक त्रिधी चित रहूँ सम्हारे। मिलै कोइ संत फिरौं तिस लारे॥"

यह कड़ी तुलसी साहिब के "पूर्व जन्म के चरित्र" में पहिली चौपाई की बीसवीं कड़ी है और उसी के दो पन्ना आगे "बरनन भेद संत मत" में पहिला सोरठा लोगों की इस बहस का खंडन करता है—

"तुलसी संत दयाल, निज निहाल मो को कियौ।
लियौ सरन के माहिं, जाइ जन्म फिर कर जियौ॥"

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी साहिब स्वयं संत थे जिनको गुरू धारण करने की ज़रूरत न थी लेकिन मरजादा के लिए किसी को नाम मात्र को अवश्य गुरू बना लिया होगा जिसके लिए संत सतगुरु कबीर साहिब और समस्त संतों की नज़ीर मौजूद है।

तुलसी साहिब अक्सर हाथरस के बाहर एक कम्मल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये दूर दूर शहरों में चले जाया करते थे। जोगिया नाम के गाँव में जो हाथरस से एक मील पर है अपना सतसंग जारी किया और बहुतों को सत मार्ग में लगाया।

इनकी हालत अक्सर गहिरे खिंचाव की रहा करती थी और ऐसे आवेश की दशा में धारा की तरह ऊँचे घाट की बानी उनके मुख से निकलती, जो कोई निकट-वर्ती सेवक उस समय पास रहा उसने जो सुना समझा लिख लिया नहीं तो वह बानी हाथ से निकल गई। इस प्रकार के अनेक शब्द उनकी शब्दावली में हैं।

तुलसी साहिब के अनुयायी अब तक हज़ारों आदमी हिन्दुस्तान के शहरों में मौजूद हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ घट रामायण, शब्दावली और रत्न सागर हैं और एक अधूरा ग्रंथ पद्मसागर है जो शब्दावली के दूसरे भाग के अंत में छपा है।

तुलसी साहिब ने अपनी बाणी में बहुत जगह बेद, कतेब, क़ुरान, पुरान, राम-रहीम और प्रचलित मतों का खोल कर खंडन किया है जिससे लोग उन्हें निन्दक और द्रोही समझते हैं पर यह उनकी नासमझी की बात है। तुलसी साहिब के पदों के अर्थ पर ध्यान देने से स्पष्ट जान पड़ता है कि उन्होंने किसी मत को झूठा नहीं ठहराया है वरन् जहाँ तक जिसकी गति है उसको साफ़ तौर पर बतला दिया है। उनका अभिप्राय केवल यह है कि इष्ट सबसे ऊँचे और समस्त पिंड और ब्रह्मांड के धनियों के धनी को बाँधना चाहिए और उसी की

सेवा और भक्ति करनी चाहिए, निर्मल चेतन्य देश से नीचे के लोकों के धनियों की भक्ति करने से परिश्रम तो उतना ही पड़ेगा और लाभ पूरा न उठेगा अर्थात् भक्त का काम अधूरा रह जायगा और वह आवागवन से न छूटेगा देर सवेर जन्म मरन का चक्कर लगा रहेगा, क्योंकि ये लोक माया के घेर में हैं चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म माया हो।

संत महात्मा गुरु नानकजी

जीवन समय—१५२६ से १५९५ तक। जनम स्थान—तलवंडी नगर, ज़िला लाहौर। सतसंग स्थान—सुल्तानपुर और करतारपुर, पंजाब। जाति और आश्रम—वेदी खत्री, गृहस्थ। गुरु—नारद मुनी।

गुरु नानक ने जीवों के चिताने के लिए देशाटन बहुत किया। पहली यात्रा उनकी पूरब को संवत १५५६ में शुरू हुई—पंजाब से आगरा, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और आसाम के प्रान्तों में अनुमान ग्यारह बरस तक घूमकर (तवारीख गुरू खालसा में बर्मा देश में जाना भी लिखा है) अपने स्थान सुल्तानपुर पंजाब को लौट आये और वहाँ थोड़े दिन ठहर कर संवत १५६७ में दूसरे सफर दक्खिन को निकले और मारवाड़, गौड़ देश, हैदराबाद, मदरास के सूबों में विचरते हुए संगलदीप (लंका) तक गये और वहाँ के राजा शिवनाम को मंत्र उपदेश दिया और उन्हीं के हेतु प्राणसंगली का ग्रंथ रचा। संगलदीप के राजा की गोष्टि का समाचार पढ़ने योग्य है जो गुरु नानक के सविस्तर जीवन चरित्र में प्राणसंगली के आदि में छपा है। फिर सुल्तानपुर को लौटकर वहाँ विश्राम किया और कुछ दिन पीछे अपनी तीसरी यात्रा में उत्तर को सिधारे। बद्री नारायण, नैपाल, सिकिम, भुटान आदि देशों की सैर करते हुए पहाड़ के रास्ते से लौटकर सुल्तानपुर में पधारे। चौथी यात्रा पच्छिम की संवत १५७० में शुरू हुई और सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलुचिस्तान, कंधार, काबुल, और कश्मीर घूमते हुए संवत १५७९ में करतारपुर में आन बिराजे और अनुमान चौबीस बरस के देशाटन के पीछे वहीं सोलह बरस विश्राम करके परमधाम को सिधारे।

गुरू नानक साहेब अपने वक्त के ऐसे पाबंद और स्वतंत्र विशेष प्रकृति के पूर्ण पुरुष थे कि बड़ी बड़ी यात्राओं में भी इन की नित्य क्रिया का समय कभी

संत महात्मा गुरु नानक जी

नहीं टलने पाया। पहर रात रहे सदैव उठ बैठते और शौच स्नान आदि कर के एकांत में ध्यान में बैठ जाते, और पहर दिन चढ़े ध्यान से उठ कर सदुपदेश करते, और फिर दर्शनाभिलाषियों का यथा योग्य सतकार कर के आप भंडार घर में जाकर देखते कि कहीं कोई भूखा तो नहीं रह गया, सब को समान भोजन कराते। फिर एकांत में मालिक का गणानुवाद करके सतसंग में जा विराजते और करतार महिमा के मिश्रित उपदेश करते, और भजन कीर्तन के उपरांत सभा विसर्जन हुआ करती और रात्रि काल को भी ऐसी ही रीति से बिताया जाता था। अब तक यही प्रवाह गुरस्थानों तथा गुर घर के महापुरुषों में चला आता है। उस समय के शिष्यों में बाबा बूढ़ा जी तथा लहना जी मुख्य गुरुमुख थे जिन में से लहना जी का दरजा बढ़ा चढ़ा था क्योंकि अनन्त शिष्यों तथा पुत्रों में से अंग देने वाली कई भाँति की परीक्षाओं में यही पूरे उतरे जिसके कारण यह अपना लहना अर्थात् लेना लेकर स्वयं गुरू साहेब की रसना द्वारा अंगद नाम से विख्यात हुए।

गुरू नानक साहेब ६९ वर्ष १० मास और १० दिन की आयु भोग कर आश्विन वदी १० सम्वत १५९५ को सदेह परम धाम को सिधारे और उनकी गद्दी पर गुरु अंगद बैठे। गुरु नानक साहेब तथा कबीर साहेब के परम धाम सिधारने की लीला एक समान मिलती है—दो पाट की चादर मात्र ही हिन्दू मुसलमान शिष्यों के हाथ लगी जिसे दोनों ने आपस में बाँट कर अपने अपने धर्म के अनुसार मक़बरा तथा देहरा बनाया जो डेहरा बाबा नानक के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरू नानक साहेब का जीवन चरित्र अपरम्पार और गंभीर उपदेशों से परिपूर्ण है जो बहुत संक्षेप में (सूची मात्र ही) प्रेमियों की भेंट किया जाता है। विशेष जानने के अभिलाषी श्री नानक प्रकाश, नानक हुलास और इतिहास गुरु खालसा आदि ग्रंथों को देख सकते हैं।

संत महात्मा दादू दयाल जी

॥ जन्म समय ॥

संत दादू दयालजी का जन्म फागुन सुदी अष्टमी बृहस्पति वार विक्रमी सम्वत १६०१ को मुताबिक़ ईसवी सन् १५४४ के हुआ था अर्थात कबीर साहिब के गुप्त होने के छब्बीस बरस पीछे। इस में सब की सम्मति है।

॥ जन्म स्थान ॥

उनका जन्म स्थान दादू-पंथी गुजरात देश के अहमदाबाद नगर को बतलाते हैं और यही पंडित चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी और पादरी जान टामस ने निर्णय किया है यद्यपि महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने उसे जौनपुर ठहराया है जो बनारस के विभाग का एक पुराना नगर है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनसे जान पड़ता है कि पं० सुधाकर जी का अनुमान ठीक नहीं है और दादू साहिब अवश्य गुजरात देश के थे—जैसे उन की साखी और पदों की बोल चाल और मुहावरे जिन में गुजराती ढंग और लफ़्ज दरसते हैं, और अनेक सुच्ची या खिचड़ी गुजराती भाषा के पद, और यह बात कि पूरबी बोली जैसी कि कबीर साहिब, रैदासजी, भीखाजी वगैरह की बाणी में पाई जाती है दादू जी की बाणी में नहीं है।

॥ जाति ॥

दूसरा विषय झगड़े का दादू दयाल की जाति है। दादू-पंथी उन को गुजराती ब्राह्मण बतलाते हैं। पं० सुधाकरजी ने इनको मोची लिखा है जो मोठ बनाने का काम करते थे और संसारी नाम इनका महाबली बतला कर प्रमाण में यह साखी गुरुदेव के अंग के ३३ नम्बर की दी है—

साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताय।
दादू मोट महाबली, सब घृत मथि करि खाय॥

[गुजराती भाषा में मोट वा मोटा बड़े और श्रेष्ठ को कहते हैं और महाबली का अर्थ संकृत में अति बलवान या पोढ़ा है] पादरी जान टामस ने इन की जाति धुनिया लिखी है और ऐसा ही सर्व साधारण में प्रसिद्ध है। हम को इस बात के निश्चय करने का न तो अवसर है और न उसकी आवश्यकता जान पड़ती है, क्योंकि पहिले तो दादू जी सरीखे भारी गति के महात्मा और भक्त की महिमा न तो ऊँची जाति के ब्राह्मण होने से बढ़ती है और न नीची जाति के मोची या मुसलमान बेहना होने से घटती है। जैसा कि कहा है—

जाति पाँति पूछे नहिं कोइ। हरि को भजे सो हरि का होइ॥

जो आँख खोल कर देखा जावे तो विशेप कर पिछले संत और साध जैसे कबीर साहिब, रैदास जी इत्यादि; और भक्त जैसे वाल्मीक (डोमड़ा, श्रीकृष्णावतार के समय में) और दूसरे वाल्मीक (बहेलिया, संस्कृत रामायण के ग्रन्थ करता) और सदना (कसाई); और जोगेश्वर ज्ञानी जैसे नारद और व्यास आदि ने
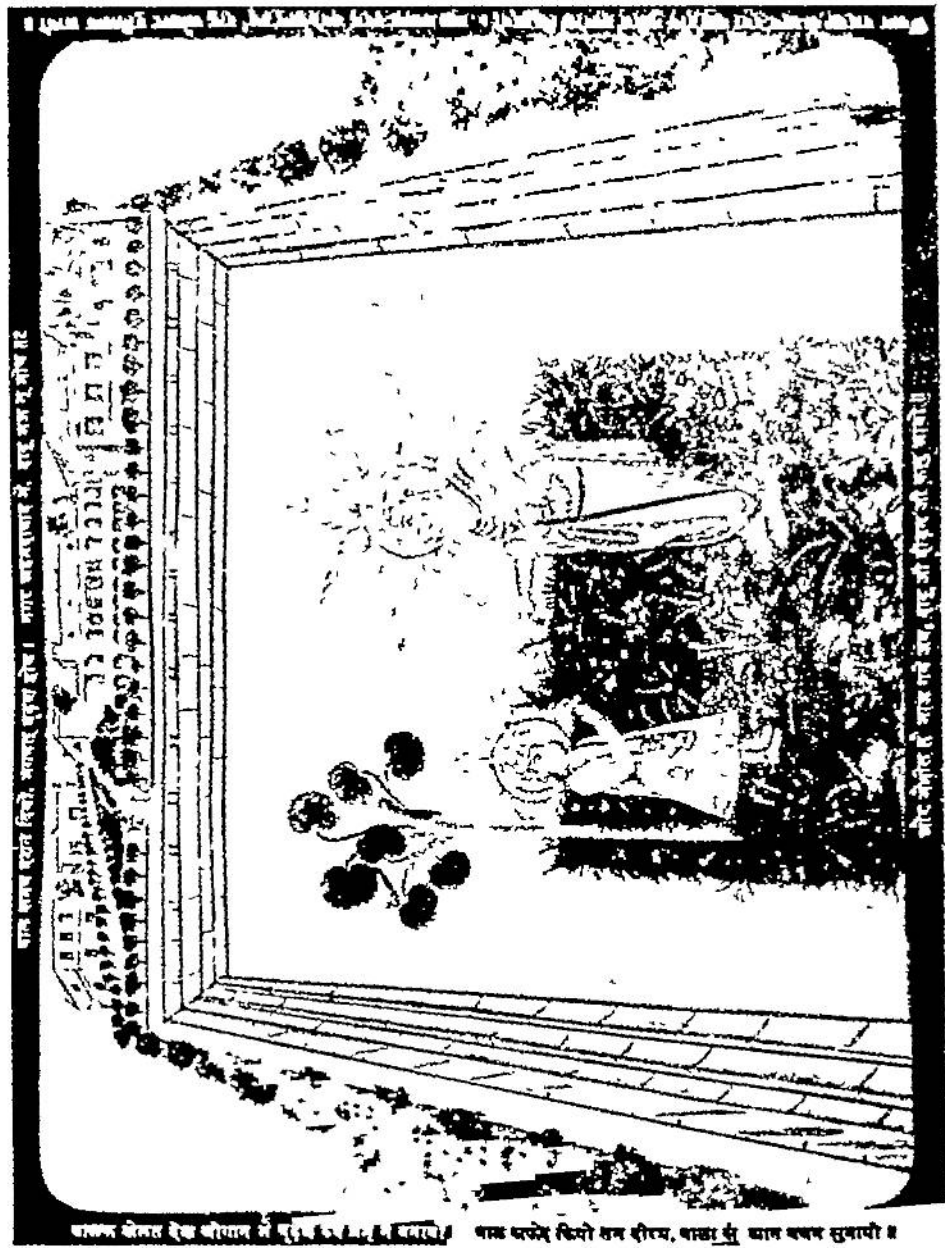
श्री दादू दयाल जी तथा उपदेष्टा गुरू वृद्धरूप भगवान।

दृश्य काँकरिया तालाब (अहमदाबाद)

बेलविडियर प्रेस, प्रयाग।

नीची ही जाति में जन्म लिया जिनकी कीर्त्ति का झंडा आज तक संसार में फहरा रहा है और सदा फहराता रहेगा।

दादू पंथी दादू दयाल के प्रगट होने का भेद इस तरह बतलाते हैं कि एक टापू में कुछ योगी भगवत भजन करते थे, उन में से एक योगी को आकाश-वाणी द्वारा आज्ञा हुई कि तुम भारतवर्ष में जाकर जीवों को चितावो। इस आज्ञा के अनुसार वह योगिराज विचरते हुए जब अहमदाबाद में पहुँचे तो वहाँ लोदीराम नागर ब्राह्मण से भेंट हुई जिसको बेटे की बड़ी अभिलाषा थी; उसने योगी से वर माँगा कि हम को लड़का हो। योगी ने कहा कि बड़े तड़के साबरमती नदी के तट पर जाव वहाँ तुम्हारी इच्छा पूरण होगी। जब लोदीराम जी दूसरे दिन सवेरे वहाँ पहुँचे तो एक बच्चा नदी में बहता हुआ मिला जिसे लोदीराम निकाल कर घर लाये और पाला। (यह कथा कबीर साहिब की उत्पत्ति कथा से पूरी भाँति से मिलती है जिन्हें काशी के लहरतारा नामक तलाब में बहते हुए नीरू जुलाहे ने पाया था और अपना बेटा बनाया) दादू पंथियों का निश्चय है कि उन्हीं योगी जी ने योग बल से अपनी काया बदल कर बच्चे का रूप धारण कर लिया और दादू दयाल बने, इसके प्रमाण में यह साखी दादू जी की बतलाते हैं:—

सबद बँधाना साह के, ता थैं दादू आया।
दुनियाँ जीवी बापुड़ी, सुख दरसन पाया॥

॥ गुरू ॥

पंडित सुधाकर द्विवेदी जी ने लिखा है कि दादू जी के गुरू कमाल थे जो कबीर साहिब के मुख्य चेलों में से थे और जिन को कितने लोग कबीर साहिब का बेटा बतलाते हैं। दादू साहिब की बाणी में कहीं से उन के गुरू का नाम नहीं खुलता परंतु कबीर साहिब की उन्होंने जगह जगह महिमा की है और कहीं कहीं साखियाँ भी कबीर साहिब की दी हैं जिन्हें क्षेपक न कहना चाहिए, पर उन के कमाल के शिष्य होने का प्रमाण कहीं नहीं मिलता। पं० सुधाकर जी के अनुसार दादू नाम कमाल का ही धरा हुआ है क्योंकि दादू जी छोटे बड़े सब को "दादा" पुकारा करते थे इस लिये कमाल ने उन का नाम दादू रक्खा।

जनगोपाल ने लिखा है कि दादू जी की अवस्था ग्यारह बरस की होने पर परम पुरुष ने एक बूढ़े साधू के भेष में उन को दर्शन दिया जब कि दादू जी लड़कों में खेल रहे थे और उनको पान का एक बीड़ा खिलाकर मस्तक पर

हाथ धरा और परमार्थ का गुप्त भेद देना चाहा जिसे बाल बुद्धि से दादू जी ने न लिया। सात बरस पीछे वही बूढ़े बाबा फिर मिले और दादू जी की बहिर्मुख वृत्ति को दया दृष्टि से अंतरमुख कर के उपदेश दिया। उसी दिन से दादू जी भगवत भजन में तत्पर हो गये और इसी लिये जन गोपाल ने दादू साहिब के गुरू का नाम "वृद्ध बाबा" लिखा है जो सुंदरदास जी के लिखे हुए नाम "वृद्धानन्द" से मिलता है। पं० जगजीवन जी के लेख के अनुसार भी साक्षात परमेश्वर ही दादू साहिब के गुरू थे और इस के प्रमाण में उन्हों ने यह साखी दादू साहिब की दी है—

[दादू] गैब माहिं गुरदेव मिल्या। पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धरया। दष्या अगम अगाध॥

॥ दयाल का बिशेषण ॥

दादू जी का क्षमा और दया का अंग इतना बड़ा था कि दादू "दयाल" के नाम से लोग उन को पुकारने लगे। इस के दृष्टान्त में कहा जाता है कि एक वार एक काज़ी जिसकी गोष्ठी दादू जी के साथ हो रही थी ऐसा झुँझला उठा कि उन के मुँह पर एक घूँसा मारा परंतु दादू जी क्रोध करने के बदले बड़ी शांति से मुँह आगे करके बोले कि भाई एक और मार ले जिस पर काज़ी बहुत लज्जित हुआ। ऐसे ही किसी समय में वह समाधि में बैठे थे, कुछ ब्राह्मणों ने जो उन से विरोध रखते थे उन को ईंटों से घेर कर बंद कर दिया। जब उन की आँख खुली तो निकलने का रास्ता न पाकर फिर ध्यान में बैठ गये और इस अवस्था में कई दिन तक रहे। अंत को आस पास के सभ्य जनों को यह हाल मिला तो उन्होंने आकर ईंटों को हटाया और बदमाशों को दंड देना चाहा परंतु दयाल जी ने कहा कि ऐसे लोग जिन की करतूत से हमारा भगवंत के चरणों से अधिक काल तक मेला रहा वह धन्यवाद पाने के योग्य हैं न कि दंड।

॥ अकबर शाह सहकाली ॥

दादू साहिब का जीवन पूरा पूरा अकबर बादशाह के राज्य समय में था। अकबर के पैदा होने के एक बरस पीछे अर्थात् बिक्रमी सम्बत् १६०१ में इन्हों ने जन्म लिया और उस के मरने के दो बरस पहिले अर्थात् १६६० के जेठ बदी अष्टमी शनिवार के अट्ठावन बरस ढाई महीने की अवस्था में चोला छोड़ा। कहते हैं कि सम्बत १६४२ में दादू दयाल की मुलाक़ात फ़तेहपुर सीकरी में अकबर शाह के साथ पहिले पहिल हुई जिस में अकबर ने उन से सवाल किया

कि खुदा की जात, अंग, वजूद और रंग क्या है, इस पर दादू जी ने यह जवाब दिया—

[दादू] इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥

(देखो बिरह अंग की साखी नं० १५२ पृष्ठ ४४)

॥ रामंत (देशाटन) ॥

दादू साहब के पहिले २९ बरस का हाल नहीं मिलता पर सम्वत १६३० में वह साँभर आये और वहाँ अनुमान छः बरस रहे। फिर आँबेर को गये जो जैपुर राज्य की पुरानी राजधानी थी और वहाँ चौदह बरस के लगभग रहे। सम्वत १६५० से १६५९ तक जैपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि राज्यों के अनेक स्थानों में बिचरते रहे और फिर सं० १६५९ में नराना में जो जैपुर से २० कोस पर है आकर ठहर गये। वहाँ से तीन चार कोस भराने की पहाड़ी है— यहाँ भी दादू दयाल कुछ काल तक रहे और यहाँ सं० १६६० में चोला छोड़ा इसलिये यह स्थान बहुत पुनीत समझा जाता है, बहुधा साधू वहाँ यात्रा को जाते हैं और कितने साधुओं के फूल भी वहाँ गाड़े जाते हैं।

॥ अखाड़े ॥

इस सम्प्रदाय के बावन प्रसिद्ध अखाड़े हैं और हर एक का महंत अलग है। यह अखाड़े विशेष कर जैपुर राज्य में हैं और कुछ अलवर, मारवाड़, मेवाड़, बीकानेर आदि राज्यों में और पंजाब व गुजरात आदि देशों में हैं। काशी में भी दादू पंथियों का एक अखाड़ा है। सब महंतों के मुखिया नराना में रहते हैं जहाँ दादू दयाल ने अपने पिछले दिनों में निवास किया था।

॥ भेषों के चिन्ह और रीति जौर रहनी ॥

इस पंथ में दो प्रकार के साधू पाये जाते हैं एक भेषधारी बिरक्त जो गेरुआ वस्त्र पहिनते हैं और पठन पाठन कथा कीर्तन जप भजन में अपना पूरा समय लगाते हैं; दूसरे नागा जो सफेद सादे कपड़े पहिनते हैं और लेन देन खेती फ़ौज की नौकरी वैद्यक आदि व्यौहार रुपया कमाने के लिये करते हैं। नागों की फ़ौज जैपुर राज्य की मशहूर है जिस में दस हज़ार नागा से कम न होंगे।

दोनों प्रकार के साधू विवाह नहीं करते, गृहस्थों के लड़कों को चेला मूड़ कर अपना बंस और पंथ चलाते हैं

दादू-पंथी साधू कबीर पंथियों की तरह न तो माथे पर तिलक लगाते और न गले में कंठी पहिनते हैं पर प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते हैं। यह लोग सिर पर टोपा या मुरायठ पहिनते हैं और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते हैं। मुरदे को यह लोग चिता लगाकर जला देते हैं पर यह चाल नई निकली है। प्राचीन रीति के अनुसार मुरदे को अरथी या बिमान पर रख कर जंगल में छोड़ आते थे जिस में पशु पंछी उस का अहार करें। दादू दयाल ने इसी चाल को अपने उपदेश में उत्तम कहा है—

हरि भज साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पशु पंछी खाइ॥
साध सूर सोहैं मैदाना। उनका नाहीं गोर मसाना॥

॥ मुख्य तीर्थ ॥

नराना में जहाँ दादू-पंथियों की मुख्य गद्दी है एक दर्शनीय मंदिर दादू द्वारा के नाम का है। यहाँ दादू दयाल के रहने और बैठने के निशान अब तक मौजूद हैं और उनके पहिरने के कपड़े हैं और पोथियाँ जिन की पूजा होती है।

॥ मेला ॥

नराना में फागुन सुदी से (जिस दिन दादू दयाल वहाँ पहिली बार आये थे) द्वादशी तक नौ दिन भारी मेला हर साल होता है।

॥ इष्ट और मत शिक्षा ॥

दादू साहिब कबीर साहिब की तरह निर्गुण के उपासक थे पर इन का इष्ट ब्रह्मांड का धनी निरंजन निराकार परमेश्वर था उसी को सब में रमने वाला राम कह कर सुमिरन भजन कराते थे। उन के मत की शिक्षा नीचे लिखे हुए विषयों पर थी—

(१) परमेश्वर की महिमा और उसका सच्चिदानन्द स्वरूप।
(२) उसकी निर्गुण आराधना और अनन्य भक्ति।
(३) उसकी परम उपासना और उसका अजपा जाप।
(४) मन को परम रूप में स्थिर करने के साधन।
(५) परम रूप का ध्यान और धारणा और समाधि।
(६) अनहद बाजे का श्रवण और उसमें मग्न होना।
(७) अमृत बिंदु का पान और परमानंद की प्रीति।
(८) परमेश्वर से अरस परस मिलाप—ब्रह्म का साक्षात्कार।

॥ समाज संशोधन ॥

दादू दयाल केवल परमार्थी शिक्षक न थे वरन संसारी चाल व्यवहार और जाति भेद में भी उन्होंने बहुत सुधार किया।

॥ चमत्कार ॥

लिखा है कि एक साल दादू दयाल आँधी नामक गाँव में चौमासे की ऋतु में थे जहाँ वर्षा न होने के कारण जीवों को अति विकल देखकर उन की माँग पर भगवंत से प्रार्थना करके दादू जी ने जल बरसाया और अकाल को दूर किया, इसके प्रमाण में यह साखी बतलाते हैं—

आज्ञा अपरंपार की, बसि अंबर भरतार।
हरे पटम्बर पहिरि करि, धरती करता करै सिंगार॥

॥ बहु भाषा बोध ॥

दादू दयाल कुछ विशेष पढ़े लिखे न थे यद्यपि उन की साखियों और पदों में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं और कितनी ही साखी और पद ठेठ फ़ारसी में हैं। गुजराती तो उन की मातृ भाषा थी ही और मारवाड़ में भी बहुत काल तक रहे सो वहाँ की भाषाओं का जानना अचरज नहीं है परंतु उन की वाणी से पंजाबी, सिंधी, मरहठी और वृज भाषा की भी अच्छी जानकारी पाई जाती है। जहाँ जहाँ ऐसे शब्द आये हैं उन के अर्थ भर मक़दूर तहक़ीक़ात करके नोट में दे दिये गये हैं। दादू साहब ने अपनी वाणी कभी अपने हाथ से नहीं लिखी, उन के पास रहने वाले शिष्य जो कुछ उन के मुख से निकलता था लिख लिया करते थे।

संत महात्मा सुंदरदास जी का जीवन-चरित्र

॥ जन्म कथा ॥

पिछले समय में चाल थी कि साधू लोग अपना वस्त्र बुनने के लिये जब काम पड़ता था सूत माँग लाया करते थे ऐसे ही एक दिन दादू दयाल के प्रेमी चेले जग्गाजी आमेर नगर में सूत माँग रहे थे और अपनी उमंग में यह हाँक लगाते थे "दे भाई सूत ले माई पूत" जब साधू जी एक सोंकिया महाजन के घर के सामने पहुँचे जो दादू दयाल का भक्त था तो यह हाँक सुन कर उस की क्वारी कन्या सती नाम्नी तमाशा समझकर उनके सामने सूत लाकर बोली "लो बाबा जी सूत" जग्गाजी ने कहा "लो माई पूत"।

जब यह लौट कर अपने गुरू के स्थान पर आये तो उनके अंतरयामी महात्मा दादू जी ने कहा कि तू ठगा आया क्योंकि इस कन्या के भाग में लड़का नहीं लिखा है सो कहाँ से आवे सिवाय इसके कि तू जाकर उसके गर्भ में बास करे। जग्गाजी उदास होकर बोले कि जो आज्ञा परंतु चरणों से अलग न रखियेगा। गुरू जी ने ढाढ़स दी और आज्ञा की कि उस लड़की के माता पिता से कह आओ कि जहाँ उस कन्या का ब्याह ठहरे वर को जता दें कि जो पुत्र उत्पन्न होगा वह परम भक्त होगा परंतु ग्यारह बरस की अवस्था में वैराग ले लेगा। जग्गाजी ने इस आज्ञा का तुरन्त प्रतिपालन किया।

कुछ दिनों में सती का ब्याह जैपूर राज्य की पहली राजधानी धौसा नगर में वहाँ के एक महाजन साह परमानंद "बूसर" गोती खँडेलवाल बनिये के साथ हुआ। कई बरस पीछे जग्गाजी ने शरीर त्याग कर सती जी के गर्भ में बास किया और दिन पूरे होने पर उन के उदर से चैत सुदी नवमी संवत् १६५३ बिक्रमी को जन्म लिया। राघवदासकृत भक्तमाल में इनके जन्म का हाल यों लिखा है—

दिवसा है नग्र चोखा बूसर है साहूकार, सुंदर जन्म लियो ताहि घर आइ कैं।
पुत्र की चाहि पवि दई है जनाइ, त्रिया कह्यो समझाइ स्वामी कहौ सुख दाइ कैं॥
स्वामी मुख कही सुत जनमैगो सही, पै वैराग लेगो वही घर रहै नहीं माइ कै।
एकादस बरस में त्याग्यो घर माल सब, वेदांत पुरान सुने बारानसी जाइ कै॥

॥ जाति ॥

सुंदरदासजी के बूसर बनिया होने का प्रमाण उनके रचे हुए कई ग्रंथों में पाया जाता है। एक बार लाहौर में एक दूसर बनिया इनसे वृथा वाद बिवाद करने लगा उसके वर्णन में आप ने लिखा है—

"बूसर कहै तू सुन हो दूसर, वाद विवाद न करना।
यह दुनिया तेरी नहिं मेरी, नाहक क्यों अड़ मरना॥"

॥ नाम-करण और गुरु-प्राप्ति ॥

संवत् १६५६ में जब सुंदरदास जी की अवस्था छः वर्ष की थी दादू दयाल धौसा में पधारे। पिता ने बालक को उनके चरणों में डाल दिया। दयाल जी उनके सिर पर हाथ धर कर बोले "यह बालक बड़ा ही सुंदर है" कोई कहते हैं कि वह ऐसा बोले कि "अरे सुंदर तू आ गया" अर्थात् जग्गा तू ने सुन्दर के शरीर में जन्म धारण कर लिया! जो कुछ हो "सुन्दर" नाम आप का तभी से

पड़ा और तभी आप दादू जी के शिष्य हुए। उनका दर्शन पाते ही सुन्दरदास जी की बुद्धि कुछ और ही रंग की हो गई और गुरु भक्ति का अंकुर पौध सरिस होकर लहलहाने लगा, वह उसी दम गुरू के साथ हो लिये और नारायण में दादू दयाल का संवत् १६६० में चोला छूटने तक उनके चरणों में रहे और इतने कम समय में ही गुरु दया और पूर्व संस्कार के प्रताप से अपना काम पूरा बना लिया। इनको जो बाल साधु और बाल कवि करके लिखा है वह यथार्थ है क्योंकि जब इनके गुरु महाराज परमधाम को सिधारे इनकी अवस्था केवल आठ बरस की थी परंतु उस समय भी इनकी कविता वैसी ही विलक्षण थी जैसा इन का प्रेम वैराग्य और बुद्धि तीव्र थी। कहते हैं कि दादूजी का परलोक होने पर उनके बड़े बेटे और उत्तराधिकारी गरीबदास ने सब साधुओं को बुलाकर उनका बड़ा आदर सत्कार किया परंतु ईर्षा-वश सुन्दरदास जी का सभा में कुछ अपमान किया, उस समय सुन्दरदास जी ने उनकी शिक्षा के हेतु यह कड़ियाँ कहीं—

क्या दुनिया असतूत करैगी, क्या दुनिया के रूसे से।
साहिब सेती रहो सुरखरू, आतम बखसे ऊसे से।
क्या किरपन मूँजी की माया, नाँव न होय नपूंसे से।
कूड़ा बचन जिन्होंने भाष्या, बिल्ली मरै न मूँसे से॥
जन सुंदर अलमस्त दिवाना, शब्द सुनाया धूँसे से।
मानूँ तो मरजाद रहैगी, नहिँ मानूँ तो घूँसे से॥

यह वचन सकल समाज के मन भाया।

॥ विद्या उपार्जन और योगाभ्यास ॥

नारायणा से चल कर सुन्दरदास जी कुछ दिन तक साधु प्रागदास (दादू दयाल के शिष्य) के संग डीडवाणे में रहे फिर साधु जगजीवण जी के साथ धौसा में अपने माता पिता के घर आगये और यहाँ संवत् १६६३ तक सतसंग हरि-चर्चा और पठन-पाठन करते रहे फिर उसी बरस में जगजीवण जी के साथ जो भारी विद्वान् संस्कृत के थे ११ वरस की अवस्था में काशी चले गये और वहाँ उन्नीस बरस तक अर्थात् तीस बरस की उमर तक रह कर संस्कृत विद्या वेदांतादि, दर्शण पुराण, और योग के ग्रंथ पढ़े और उसका साधन भली भाँति लग कर किया और सब में निपुण हो गये। काशी में वह कई महात्माओं और साधुओं का सतसंग भी करते रहे।

॥ फतहपुर शेखावाटी गमन ॥

संवत् १६८२ में सुंदरदास जी काशी से लौटे आपके साथ और भी साधू थे जिनमें से एक फ़तहपुर शेखावाटी आने वाला था उसी के संग आप वहाँ आये और अपने प्रिय गुरु भाई प्रागदास जी को वहीं ठहरा हुआ पाकर तथा वहाँ के साधु-भक्त साहूकारों की प्रार्थना पर वहीं ठहर गये और योगाभ्यास डट कर किया और इसी के साथ सतसंग और कथा कीर्त्तन करते और कराते रहे और अनेक जीवों को सत मारग में लगाया। यहाँ सुन्दरदास जी की कीर्त्ति बहुत फैली। कुछ दिनों प्रागदास जी के संग डीडवाणे में भी दूसरी बार रहे और बहुधा दादू दयाल की वाणी के अर्थ का विचार और निर्णय उनके और साँगानेर वाले रज्जब जी के साथ करते रहे यहाँ तक कि उस गूढ़ वाणी के जानने में यह अद्वितीय समझे जाने लगे। इनके ग्रंथों को लोग दादू दयाल की वाणी का प्रदर्शक कहते हैं।

फतहपुर में वहाँ के नवाबों से भी सुन्दरदास जी का पूरा मेल हो गया था मुख्यकर नवाब अलफ़खाँ और उनके पुत्र दौलतखाँ और ताहिरखाँ के साथ। अलफ़खाँ आप भाषा के कवि थे। उनके बनाये हुए कई ग्रंथ अब तक मौजूद हैं। सुन्दरदास जी की करामातों और चमत्कारों को देख कर (जिन के दृष्टान्तों को यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है) उनके चित्त में इनकी बड़ी महिमाँ समा गई थी और उनको "मर्दे खुदा" कहने में सङ्कोच नहीं करते थे।

॥ देशाटन ॥

सम्वत् १६९९ में साधु प्रागदास जी का देहांत हो जाने पर सुन्दरदास जी का चित्त फतहपुर में वैसा नहीं लगता था और वह प्रायः रामत को बाहर चले जाया करते थे। उत्तरीय भारत और राजपूताने में बहुत फिरे और जिन-जिन स्थानों में दादू दयाल ठहरे थे उनको देखा और जो जो दयाल जी के गुरमुख भक्त थे उनसे मिले। बड़े बड़े तीर्थ स्थान और पंजाब के प्रसिद्ध नगरों में घूमे और दिल्ली लाहौर आदि की तो कई बार सैर की।

इनकी यात्रा का चरित्र बहुत कुछ है परंतु यहाँ लिखने का स्थान नहीं। यात्रा ही में स्थान स्थान पर ग्रंथों की रचना की सो बात उन ग्रंथों के पढ़ने से विदित होती है।

॥ ग्रंथ रचना ॥

कह चुके हैं कि सुन्दरदास जी बाल-कवि थे परंतु उनकी वाणी में संसारी कवियों की नाईं थोथी जटक और तुकबंदी और पोला अलंकार नहीं है वरन्

बड़े बड़े साधु महात्मा की भाँति प्रेम वैराग्य गुरुभक्ति और अनुभव ज्ञान में पगी हुई हैं, चाहे उसे महा काव्य कहो चाहे एक भारी योगाभ्यासी का सत्य निरूपण, चाहे एक साधु-शिरोमणि की वाणी, वह भारतवर्ष के साहित्य भंडार में एक अनमोल रत्न है। शृंगार रस के वह बहुत विरुद्ध थे और सुन्दर कवि की, जिसने "सुन्दर शृंगार" नामी ग्रंथ सम्वत १६८८ में आगरे में रचा था, इनके साथ एकता करना बड़ी भूल है—इस कविता तथा "रस मंजरी" पर उन्होंने कैसा कटाक्ष किया है—

रसिक प्रिया रसमंजरी और शृंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन लगत विषयिन कूँ प्यारी।
जागै मदन प्रचंड सराहै नषसिष नारी॥
ज्यूँ रोगी मिष्टान खाइ रोगहि विस्तारै।
सुंदर ये गति होइ जोइ "रसिक प्रिया" धारै॥

जैसे कि शृंगार रस से सुंदरदास जी को चिढ़ थी वैसी ही मिहीन कटाक्ष और हास्य रस से उनको रुचि थी—उनकी कविता में बारीक चुटकियाँ और कटाक्ष और हँसोड़पन जिसमें वेदांत की गंभीरता और रूखापन घुल जाता है उसको देखें। वेदांत मत के सार को सरल भाषा में संक्षेप से सर्व साधारण के उपकारार्थ दरसा देना इसमें सुंदरदास जी अद्वितीय थे और इसी से राघवकृत भक्तमाल में इनको शंकराचार्य्य की पदवी दी है।

सुंदरदास जी के ग्रंथ नीचे लिखे जाते हैं—

(१) ज्ञान समुद्र—पाँच उल्लासों[१] में।

(२) सवैया—३४ अंगों में जो सुंदर विलास के नाम से प्रसिद्ध है।

(३) "सर्वांग योग" ग्रंथ से लेकर "पूर्वी भाषा बरवै" तक ३६ ग्रंथ।

(४) साखी—३१ अंगों में।

(५) पद (शब्द वा भजन)—२७ राग रागनियों में।

(६) चौबोला, गूढ़ार्थ, चित्र काव्य, दशों दिशा के सवैये और फुटकर।

ये ग्रंथ समय समय पर अनेक स्थानों में रह कर अलग अलग प्रसङ्गवश रचे गये हैं। ज्ञान समुद्र की रचना काशी में सम्वत १७१० में हुई, सवैया प्रायः फ़तहपुर में बनी, अन्य भाषाओं के ग्रंथों की रचना उन्हीं देशों में निवास के

(१) लहरों।

समय में हुई है। यह निश्चय है कि सम्वत १७४२ के पीछे कोई बड़ा ग्रंथ नहीं रचा गया।

॥ बहु भाषा ज्ञान ॥

सुन्दरदास जी संस्कृत के पंडित तो थे ही पर हिंदी के भी पूरे जानकार थे। संस्कृत में कविता की रचना उनको नापसंद थी क्योंकि उससे सर्व साधारण का उपकार नहीं होता था। वह फारसी, पूरबी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषायें भी जानते थे जिसका प्रमाण उनके ग्रंथ हैं।

॥ शौचाचार ॥

सुन्दरदास जी शौच और सफाई और स्वच्छ चाल व्यवहार को बहुत पसन्द करते थे और गंदगी से घिनाते थे, इसी से पंजाब, दक्षिण मारवाड़, फ़तहपुर [शेखावाटी तक जहाँ उनका आप स्थान था] तथा गुजरात और पूरब के आचार व्यवहार पर बड़ा कटाक्ष किया है तथा अशुद्ध और मलिन व्यवहार की बड़ी हँसी उड़ाई है—गुजरात के लिये "आभड[1] छोत अतीत सौं कीजिये बिलाइ रु कूकर चाटत हाँडी"; मारवाड़ के विषय में "वृच्छन नीर न उत्तम चीर सु देसन में गत[2] देस है मारू"; फ़तेहपुर की स्त्रियों के मलिन आचार पर "फूहड़ नार फ़तेहपुर की"; दक्षिण के संबंध में "राँधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन"; पूरब के देशों के आचार पर "ब्राह्मण क्षत्रिय वैश रु सूदर चारुहिं बरन के मंछ बघारत", इत्यादि। जो देश आपको प्रिय थे वे मालवा, उत्तराखंड, तथा क़ुरसाना थे—उनके संबंध में कहा है "मालवो देस भलो सबही तें"; "जोग करन को भली दिसि उत्तर"; तथा

पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन, देस विदेस फिरे सब जानें।
केतक द्योस फतेपुर माहिं सु, केतक द्योस रहे डिडवानें॥
केतक द्योस रहे गुजरात हू, उहाँ हू कछू नहिं आयो है ठानें।
(अब) सोच विचार के सुंदर दास जु, याही तें आनि रहे क़ुरसाने॥

॥ अंत काल ॥

सुन्दरदास जी अनुमान संवत १७४४ तक फ़तेहपुर में रहे फिर संवत १७४५ के पीछे रामत करते साँगानेर को पधारे जो जयपुर से चार कोस दक्खिन को है और जहाँ दादू दयाल के प्रधान और श्रेष्ठ शिष्य रज्जब जी उनके और शिष्यों के साथ रहा करते थे जिनसे सुन्दरदास जी का प्रीतिभाव था।

---

(१) भिटना। (२) गया बीता।

यहाँ वह और भी कई बार आये थे और बहुत समय तक ठहर कर कई ग्रंथ रचे थे। स्वयं रज्जब जी की कविता भी उत्तम और प्रसिद्ध है।

इस समय सुन्दरदास जी यहाँ रोगग्रस्त हुए और बीमारी बढ़ती ही गई परंतु औषधि सिवाय राम नाम के कुछ भी न ली सदा ध्यान में लीन रहते थे अंत को नदी किनारे मिती कातिक सुदी ८ वृहस्पतिवार संवत १७४६ को शरीर त्याग किया। आपने अंतकाल जो वचन कहे थे वह "अंत समय की साखी" के नाम से विख्यात हैं।

> मान लिये अंतःकरण जे इंद्रिन के भोग।
> सुंदर न्यारो आतमा, लगो देह को रोग ॥ १ ॥
> वैद्य हमारे रामजी, औषधि हू हरि नाम।
> सुंदर यहै उपाय अब, सुमिरण आठों जाम ॥ २ ॥
> सुंदर संशय को नहीं, बड़ो महुच्छव येह।
> आतम परमातम मिल्यो, रहो कि बिनसो देह ॥ ३ ॥
> सात बरस सौ में घटैं, इतने दिन की देह।
> सुंदर आतम अमर है, देह खेह की खेह ॥ ४ ॥

अरथी के साथ में बड़ा जमघटा दादूपंथी साधुओं और सेवकों और सुन्दरदास जी के शिष्यों का था। घामाई का बगीचा जहाँ अब है उससे परे दाह क्रिया की गई। इस स्थान पर एक छोटी गुमटी बनी हुई है जिसमें सफेद पत्थर पर इनके और इनके छोटे शिष्य नारायणदास के चरण चिह्न और यह दोहा खुदा है----

> संवत सत्रा सै छीयाला। कातिक सुदी अष्टमी उजाला।
> तीजे पहर भरस्पति वार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ॥

॥ रूप ॥

सुन्दरदास जी डील डौल में बड़े सुन्दर, गोरे रंग के, तेजस्वी और उँचे क़द के थे, मस्तक भारी और ललाट (पेशानी) ऊँचा, आँखें सुन्दर चमकदार थीं, वाणी मधुर मनोहारिणी थी और न बहुत बोलते थे। खान पान आचार व्यवहार में बड़े ही पक्के संजमी थे। बालकों को देख उनके साथ वार्त्तालाप से बड़े प्रसन्न होते और कभी कभी उनको चटकीले छंद बना कर सुनाते। ध्यान भजन और पाठ में कभी नहीं थकते वृद्ध अवस्था तक ऐसा ही स्वभाव रहा। आप आशु कवि थे अर्थात बिना प्रयास के कविता करते थे और एक बेर बना

लड़के से ठहरा। जब बरात आई समधी ने बिना माँस के भोजन करने से इनकार किया। इस पर जगजीवन साहब ने मौज से बैंगन की तरकारी बनवा दी जिसे सब बरातियों ने मॉस समझ कर बड़ी रुचि से खाया। इसी कारन उनके पंथ वाले बैंगन को मॉस के तुल्य समझ कर उस को नहीं खाते।

जगजीवन साहब पूरे संत थे जिन की ऊँची गति उनकी बानी पुकारती है। संपूर्ण बानी रत्न-जटित है जिस के अंग अंग से भेद, दीनता और प्रेम टपकता है और पाठ करने से चित्त गद्गद होकर प्रेम के घाट पर आ जाता है। इनके गुरू बुल्ला साहब की बानी भी बड़े ऊँचे घाट की और अत्यंत कोमल है जो यहाँ छपी है।

जगजीवन साहब का अति मनोहर ग्रंथ शब्द-सागर है जिसका पहिला भाग और दूसरा भी छपा है जिसमें इनके और और अंग हैं।

इस के सिवाय पादरी जॉन टामस लिखते हैं कि जगजीवन साहब के दो ग्रंथ ज्ञानप्रकाश और महाप्रलय और हैं। इन ग्रंथों को हमने नहीं देखा है। पहिली पुस्तक के विषय में पादरी साहब कहते हैं कि वह महादेव और पारवतीजी के बीच प्रश्नोत्तर के रूपक में है पर उसका विषय क्या है यह नहीं बतलाया— ज़ाहिर में जैसा कि नाम से जान पड़ता है ज्ञान पर सम्वाद होगा। दूसरी पुस्तक में इस तरह चर्चा की है कि भक्त जन सब के बीच में रह कर सब से अलग है, वह सब जानता है किसी से पूछने का मुहताज नहीं है, वह न जनमता है न मरता है, न सीखता है न सिखाता है, न रोता है न पछताता है, उसको न दुख व्यापता है न सुख, न न्याय न अन्याय, इत्यादि—फिर पूछा है कि ऐसे पुरुष का कोई पता बतला सकता है।

जगजीवन साहब के गुरुमुख चेले दूलमदास जी थे जिनका नाम प्रसिद्ध है। उनकी बानी भी यहाँ छपी है।

श्रीमहंत राजारामजी बड़ागाँव ज़िला बलिया की कृपा से हम को जगजीवन साहब के गुरु-घराने की वंशावली का वृत्त मिला है जो यहाँ छापा जाता है। उस से जान पड़ेगा कि कैसे कैसे भारी भक्त और महात्मा इस गुरु-घराने में हुए हैं, और पलटू साहब जिन की अद्भुत कुंडलियाँ और शब्दावली हम छाप चुके हैं और भीखा साहब जिन की शब्दावली भी छप चुकी है इसी घराने के थे॥
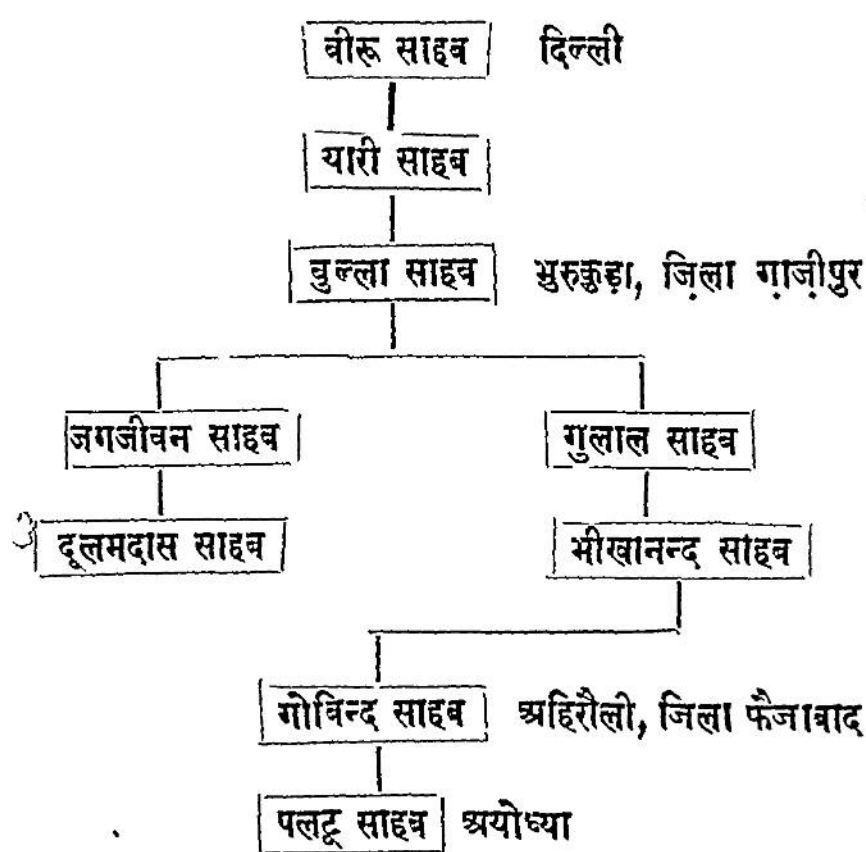
महात्मा दूलनदास जी का जीवन-चरित्र

महात्मा दूलनदास जी के जीवन का प्रमाणिक वृत्तान्त भी कितने ही प्रसिद्ध साधों और भक्तों की भाँति नहीं मिलता। यह जगजीवन साहिब के गुरुमुख चेले थे जो थोड़े बरस अट्ठारहवें शतक विक्रमीय के पिछले भाग में और विशेप काल तक उन्नीसवें शतक के अगले भाग में बर्त्तमान थे।

यह जाति के सोम-बंशी ठाकुर थे जिनका जन्म समेसी गाँव ज़िला लखनऊ में एक ज़मींदार के घर हुआ था। जगजीवन साहिब से मौज़ा सरदहा में उपदेश लेने पर यह बहुत काल तक उनके संग कोटवा में रहे फिर ज़िला रायबरैली में धर्म्मे नाम का एक गाँव बसाया जहाँ आकर विश्राम किया और बहुत काल तक परमार्थ का सदाव्रत बाँट कर चोला छोड़ा।

इन के चमत्कार की कथाओं में एक कथा यह प्रसिद्ध है कि बारावंकी के उमापुर गाँव में एक साधू नेवलदासजी विराजते थे जिन के पास एक मुसल्मान

फ़क़ीर रहा करता था। एक दिन नेवलदासजी ने उस फ़क़ीर से कहा कि तेरे जीवन का कागज फटा ही चाहता है दस दिन और रह गये हैं। यह सुन कर फ़क़ीर ने सोचा कि इसी मीआद में जगजीवन साहिब की चौदहो गद्दियों और चारों पायों का दर्शन करलूँ, सो सिवाय महात्मा दूलनदास जी के पाये के, सब गद्दियों और तीन पायों के दर्शन किये तो सब ने नेवलदासजी साधू के वचन को सकारा, पर जब वह महात्मा दूलनदास जी के पास नवें दिन पहुँचा और हाल कह कर भभूत माँगी तो महात्माजी बोले कि नेवलदास ने मिथ्या नहीं कहा था परन्तु कागज़ तेरे "जीवन" का नहीं फटा है बरन तेरे दरिद्रता का। फिर उसकी प्रार्थना पर उसे दूसरे दिन तक अपने चरनों में रहने की आज्ञा दी। जब मरने का दिन बीत गया तो वह फ़क़ीर प्रसन्न होकर नेवलदास साधू के पास गया और अपना वृत्तान्त कहा जिस पर वह साधू हँस कर बोला कि दूलन दफ़्तर का मालिक है अपने सामर्थ से तेरे जीवन के कागज की जगह तेरे दरिद्रता का कागज फाड़ दिया अब जा कर निःशंक भजन में लग।

दूलनदास जी गृहस्थ आश्रम ही में रहे, ज़ाहिर में ज़मींदारी के काम को नहीं छोड़ा और यही मर्य्यादा जगजीवन साहिब के समस्त गद्दियों और पायों की है।

महात्मा चरनदासजी का जीवन-चरित्र

महात्मा चरनदास जी का जन्म राजपूताना के मेवात देश के डेहरा नामी गाँव में एक प्रसिद्ध धूसर कुल में हुआ था, जन्म का दिन भादों सुदी ३ मंगलवार सम्वत् १७६० विक्रमी मुताबिक सन् १७०३ ईसवी के था और ७६ बरस की उमर तक प्रेमाभक्ति का सदावर्त चलाकर सम्वत् १८३९ में दिल्ली में चोला छोड़ा जहाँ उनका स्थान अब तक बना हुआ है। यह ७६ बरस का समय बड़े तखड़ पखड़ और उखाड़ पछाड़ का था जो कि साध या संत के बिराजमान होने का एक लक्षण है। सन् १७०७ अर्थात इनके प्रगट होने के चार बरस पीछे तक औरङ्गज़ेब दिल्ली के तख़्त पर था और इस ज़ालिम बादशाह की दारुण पीड़ा और मरहट्टों के साथ घोर संग्राम का हाल इतिहास से जाना जा सकता है। उसके मरने पर बहादुरशाह का तख़्त पर बैठना और पाँच बरस तक उसकी सिक्खों के साथ लगातार लड़ाइयां भी प्रसिद्ध हैं। फिर सन् १७१२ और

१७१६ के बीच में तीन बादशाह हुए और सन् १७१६ में मुगल खानदान फिर गद्दी पर आया और मुहम्मद शाह का निपुंसक राज शुरू हुआ जो मरता जीता सन् १७४८ तक सिसकता रहा। इसी बादशाहत में सन् १७३८ में नादिरशाह का हमला हुआ जिसने लूट मार कर लोहू की नदी बहा दी और कितने देशों को भिखमंगा बना दिया और स्त्रियों की हुर्मत ली। सन् १७४८ से ५४ तक अहमदशाह का राज रहा और उसके पीछे आलमगीर सानी पाँच बरस तक गद्दी पर था और सन् १७५६ में शाहआलम बादशाह हुआ जो चरनदास जी के गुप्त होने के समय तक नाम मात्र को राज करता रहा। इसके जमाने में अब्दालियों की चढ़ाई और पानीपत की लड़ाई हुई। अंगरेजों अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार की दृढ़ता इसी के समय में हुई और सन् १७७४ से १७८५ तक प्रतापी लाट वॉरन हेस्टिँगज हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल रहा।

यह सब तवारीखी हाल है और इनके लिखने का इतना ही अभिप्राय है कि चरनदास जी के समय में हिंदुस्तानियों की पूरी गढ़त हुई और उनका बल तोड़ कर परमार्थ में लगने की थोड़ी बहुत योग्यता पैदा की गई।

चरनदास जी का घरेलू नाम रनजीतसिंह था उनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुञ्जो था। जब यह सात बरस के थे एक दिन इनके पिता जंगल में गये (जैसा कि वह कभी कभी सुमिरन ध्यान के लिये जाया करते थे) और फिर वहाँ से न लौटे। घर वालों ने बहुत खोज की पर सिवाय उनके कपड़ों के जो जंगल में एक जगह रक्खे मिले और कुछ पता न चला। तब चरनदासजी को और उनकी माता के साथ उनके नाना जो दिल्ली में रहते थे अपने घर ले आये।

चरनदास जी को बालक पन ही से परमार्थ का बड़ा चाव था। लिखा है कि १६ बरस की अवस्था में इन को जंगल में जहाँ यह भगवंत के बिरह में व्याकुल होकर रो रहे थे शुकदेव मुनि मिले और शब्द मार्ग का उपदेश दिया। चरनदास जी बारह बरस तक दिल्ली में अभ्यास करते रहे और इसके पीछे लोगों को उपदेश देना आरंभ किया।

उनके निकटवर्ती शिष्य ५२ थे जिनकी बावन गद्दियाँ अलग-अलग आज कल वर्तमान हैं, परंतु इनके गुरुमुख चेले गुसाइं युक्तानंद जी समझे जाते थे उनकी चेलियों में सहजो बाई और दया बाई की भक्ति बड़ी प्रचंड थी जो कि उनकी कोमल और अपूर्व बानी से टपकती है इनकी बानियां भी अलग छपीं हैं।

चरनदास जी के विषय में बहुत से करामात के कौतुक कहे जाते हैं जो उनके शिष्य रामरूप जी की बनाई हुई "गुरु भक्ति प्रकाश" नामक पोथी में

लिखे हैं परंतु उनमें से कोई ऐसे नहीं हैं जिनसे उनकी महिमा ऐसों के चित्त में चढ़े जो साध गति की समर्थता को जानते हैं इसलिये उनको विस्तार के साथ लिखना आवश्यक नहीं है तो भी नमूने की तरह दो तीन लिख दिये जाते हैं। कहा जाता है कि (१) चरनदास जी ने अपनी माँ को साक्षात् भगवान् के दर्शन कराये। (२) नादिरशाह ने विरोध से इनको कैद में रक्खा जहाँ से वह गुप्त हो गये। फिर उसने दूसरी बार पकड़वा कर अपने सामने बेड़ी हथकड़ी और तौक डलवाकर कारागार में बंद करके कुंजी दरवाजे के ताले की अपने पास रख ली, रात को चरनदास जी नादिर शाह के सोने के कमरे में प्रगट होकर उसके सिर पर ऐसी लात मारी कि बादशाह काँपने लगा और चरनों पर गिर कर क्षमा माँगी। (३) शाह आलमगीर सानी के मरने की तिथि और घड़ी उन्होंने दो बरस पहले से बता दी थी—इत्यादि।

पर ऐसी करामातें महात्मा चरनदासजी सरीखे भारी गति के पुरुष के लिये महा तुच्छ है क्योंकि पूरे साध की अपने भगवंत से एकता हो जाती है अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं रहता।

सब सच्चे साधों और संतों ने गुरू और नाम की महिमा गाई है और कहा है कि बिना इन दोनों की मुख्यता किये किसी साधन से जीव का पूरा उद्धार नहीं हो सकता। उन सब का मार्ग एक है अर्थात् शब्द अभ्यास, क्योंकि "गुरू" से उनका अभिप्राय शब्द अभ्यासी और शब्द सरूपी गुरू से है चाहे वह किसी पंथ और जात में हों और "नाम" का मतलब धुन्यात्मक नाम है जिसकी धुनि आप से आप घट घट के ऊँचे देश में हो रही है। चरनदास जी पूरे साध गुरू थे जैसा कि इस पुस्तक के सारांश निरूपन अंग के शब्दों को समझ कर पढ़ने से विदित होता है। वहाँ कहा है कि सतगुरु वही है जो शब्द की चोट करता है और नाम वह है जो लिखने पढ़ने और बोलने में नहीं आता है अर्थात् धुन्यात्मक नाम; परंतु इस भेद को उनके अनुयाइयों में से भी विरले समझते हैं। यही हाल कबीर साहब, गुरु नानक साहब, पलटू साहब, जगजीवन साहब, दरिया साहब और दूसरे महात्माओं के मतों का है। पर याद रखना चाहिये कि उनके चलाने वाले महापुरुष और महात्मा थे और जो एक मत के अनुयाई दूसरे मत के आदि आचार्य या उस मत की निंदा करते हैं वह अनसमझता से मानों अपने आचार्य और अपने मत की निंदा करते हैं और अपने को महा पातकी बनाते हैं।

यह सलाह उन लोगों के हित के लिये है जो साधों या संतों के पंथ में

हैं निरे पंडितों और विद्वानों के लिये नहीं है जिनकी आँखों पर ऊँची जाति और विद्या बुद्धि के अहंकार का परदा पड़ा हुआ है। यह बेचारे क्या करें क्योंकि सब साधों और संतों ने जाति पाँति करम भरम, मूरत पूजा और शास्त्रों की बहिरमुखी करतूत का निषेध जोर देकर किया है जिससे न केवल इनके जाति अभिमान पर चोट लगती है वरन् जीविका में भी खलल पड़ता है इसलिये वह विरोध के घाट पर आ बैठते हैं।

चरनदास जी ने भी और साध संतों की तरह बाहरी कार्रवाई और अटक भटक का खंडन किया है और यद्यपि बानी में जोग बैराग ज्ञान आदिक सब साधन कहे हैं परन्तु सिद्धांत में नाम और गुरु भक्ति ही को सबसे ऊँचा रक्खा है और इसका इशारा अपनी बानी के समाप्त की चौपाई में किया है—

अद्भुत ग्रंथ महा सुख दाई। ताकी महिमा कही न जाई॥
ता में जोग ज्ञान बैरागा। प्रेम भक्ति जा में अनुरागा॥
निर्गुन सर्गुन सब हीं कहिया। फिर गुरु चरन कमल में रहिया॥
जो कोइ पढ़ि पढ़ि अर्थ बिचारै। आप तरै औरन को तारै॥

नीचे लिखी हुई कड़ियों में चरनदास जी ने वेद, पुरान, देवताओं की पूजा, तीरथ, बरत, करम भरम, इत्यादि की असली हैसियत दिखला कर गुरु भक्ति और नाम को दृढ़ाया है—

शब्दों की कड़ियाँ

भेद बानी अंग का शब्द ९

छर ही नाद वेद अरु पंडित छर ज्ञानी अज्ञानी।
ब्रह्मा सेस महेसर छर ही छर ही त्रैगुन माया।
छर ही सहित लिये औतारा छर ह्वाँ तक जहँ माया।
चरनदास सुकदेव बतावै निःअच्छर है सब सूँन्यारा।

भेद बानी अंग का शब्द ३

सब जग पाँच तत्व का उपासी।
परम तत्व पाँचौ से आगे गुरु सुकदेव बखानैं।

भेद बानी अंग का शब्द १३

बिरंच महादेव से मीन बहुतै जहाँ होयँ परगट कभी गोत मारा।
तासु में बुदबुदे अंड उपजैं मिटैं गुरु दई दृष्टि जा सूँ निहारा।

अनहद शब्द की महिमा के अंग का शब्द १२

किरिया कर्म भर्म उरझेरे ये माया के भटके।
ज्ञान ध्यान दोउ पहुँचत नाहीं राम रहीमा फटके।
जग कुल रीत लोक मरजादा मानत नाहीं हटके।

करम भरम के निषेध अंग का शब्द २

साधो घूँघट भर्म उठाय होली खेलिये।
वेद पुरान लाज तजिबे री इन में ना उरझैये।

भेद बानी अंग का शब्द १

गुरु दूती बिन सखी पीव न देखो जाय।
भावैं तुम जप तप करि देखो भावैं तीरथ न्हाय।
वेद पुरान सबै जो ढूँढ़े स्त्रुति इस्मृति सब धाय।
आनि धर्म औ क्रिया कर्म में दीन्हों मोहिं भरमाय।

संत महात्मा गरीबदास जी का जीवन-चरित्र

महात्मा गरीबदास जी मौज़ा छुड़ानी, तहसील झज्जर, ज़िला रोहतक (पंजाब) में वैसाख सुदी पूनो सं० १७७४ वि० मुताबिक ईसवी सन् १७१७ को प्रगट हुए। वह जाति के जाट धनखड़े या दलाल गोत्र के थे और पेशा जमींदारी का करते थे। अपने घर मौज़ा छुड़ानी ही में सतसंग खड़ा करके जीवों को चेताते रहे और सारी उमर गृहस्थ में रह कर ६१ वर्ष की उमर में भादों सुदी २ विक्रमी सं० १८३५ मुताबित ईसवी सन् १७७८ को चोला छोड़ा। इस हिसाब से जान पड़ता है कि गरीबदास जी और महात्मा चरनदासजी एक ही समय में विराजमान थे—चरनदास जी के जन्म से चौदह बरस पीछे यह प्रगट हुए और उनके चोला छोड़ने से चार बरस पहिले गुप्त हुए।

महात्मा गरीबदासजी के दो लड़कियाँ और चार लड़के थे कुछ लोगों का कथन है कि उनके बेटों ही में से एक गद्दी पर बैठा और कुछ का कहना है कि उनके गुरुमुख चेले सलोतजी ने गद्दी पाई। जो भी हो इस समय तो यही रिवाज है कि औलाद ही को महन्ती मिलती है और वह गृहस्थ ही में रहा करते हैं।

महात्मा गरीबदासजी पूरी साध गति को प्राप्त थे और उन्होंने संत कबीर साहब को अपना गुरु धारन किया। कबीर साहब अनुमान तीन सौ बरस इनके

पहिले हुए थे लेकिन महात्मा गरीबदासजी से उनका मेला होने की बाबत कितनों का तो विश्वास है कि सुपने में दर्शन हुए और उपदेश मिला और कुछ लोग कहते हैं कि कबीर साहब प्रगट हुए और एक छोटी सी भैंस को जो कभी गाभिन नहीं होती थी दिखला कर कहा कि इसका दूध हमको पिलाओ। महात्मा गरीबदासजी ने उत्तर दिया कि यह दूध नहीं देती। जिस पर संत कबीर साहब बोले कि देखो तो सही जरूर देगी। महात्मा गरीबदास जी ने ज्यों ही हाथ लगाया उस छोटी सी भैंस के थन से दूध टपकने लगा—यह चमत्कार देखकर महात्मा गरीबदासजी को संत कबीर साहब के समरथ होने का विश्वास हुआ और उनके चरणों पर गिरे और उपदेश भी लिया। पहली कथा ज्यादा समझ में आती है—

बाईस बरस की उमर में महात्मा गरीबदासजी ने एक ग्रंथ रचना शुरू किया जिसमें सत्तरह हजार चौपाई और साखी उनकी हैं और उसी के साथ संत कबीर साहब की सात हजार साखियाँ भी शामिल की हैं उन्हीं सत्तरह हजार कड़ियों में से इस पुस्तक के अंग और कड़ियाँ चुन कर छापी गई हैं—

महात्मा जी के पंथ के बहुत से अनुयायी हैं—और अब तक उनका वंस भी मौजूद है। मौजा छुड़ानी में फागुन सुदी दसमी को एक बड़ा मेला गरीबदासियों का उन महात्माजी का जारी किया हुआ अब तक होता आ रहा है।

महात्मा जी की बाबत बहुत से चमत्कार प्रसिद्ध हैं लेकिन वह सब लिखने के लायक नहीं हैं सिर्फ दो एक चुनकर लिखे जाते हैं—

(१) एक साल सूखा पड़ा—सेवकों ने प्रार्थना की तो आपने दया से ऐसी मौज की कि खूब पानी बरसा—यह चर्चा दिल्ली में बादशाह के कान तक पहुँची—बादशाह पर उसी समय में एक दुशमन ने चढ़ाई भी कर दी थी इसलिये बादशाह ने बड़े आदर और सत्कार से बहुत से हाथी और सवार भेज कर महात्माजी को बुलवाया। उन्होंने जुलूस को तो लौटा दिया और आप सादी चाल से एक घोड़ी पर चढ़ कर पाँच सेवकों के साथ दिल्ली पहुँचे—और महात्मा चरनदासजी के स्थान पर ठहर कर वहाँ से पैदल बादशाह सलामत के यहाँ गये—बादशाह ने दीनतापूर्वक दुश्मनों से बचने की विनती की—महात्माजी बोले कि यदि तुम तीन बातें छोड़ दो तो दुश्मन लोग तुम्हारा बाल-बाँका न कर सकेंगे—एक तो गोवध, दूसरे अनाज पर कर, तीसरे बहुत सी बेगमों का रखना—इस पर बादशाह के दरबारियों ने बादशाह को भड़काया कि यह फ़क़ीर हिन्दू है और अपने मत के जाल में हुजूर को भी फँसाना चाहता

है। बादशाह सलामत ने उन नादानों की सलाह में आकर महात्माजी को मय उनके चरण सेवकों के कैदखाने में तीन तालों में बंद करवा दिया। पहरेदारों ने ताने से कहा कि देखें तो अगर सच्चे फकीर हो तो बन्दीखाने से निकल जाओ। तब कुछ देर बाद महात्माजी ने ऐसी मौज की कि तीनों दरवाजे और ताले खुल गये और वह अपने सेवकों के साथ निकल कर अपने अपने स्थान को वापस आये अगले दिन जब बादशाह सलामत को खबर लगी तो वह बहुत लज्जित हुए फिर दोबारा महात्मा जी को बुलवाया पर वह नहीं आये—फिर बादशाह ने पाँच गाँव की जागीर देनी चाही उसके लेने से भी महात्माजी ने इन्कार कर दिया।

(२) मौज़ा आसोध जिला रोहतक के एक साहूकार का इकलौता बेटा संतोषदास महात्माजी की अपार महिमा सुनकर उनका चेला हुआ और कुछ दिन बाद उसकी प्रार्थना पर उसे साधू बना लिया—यह सुन कर उसके बाप को बड़ा क्रोध आया और महात्माजी के निज स्थान पर जा करके बहुत भला बुरा कहकर बोला की तू ने मेरे बेटे को साधू बना लिया है अब उसकी घरवाली तेरी बहिन का क्या हाल होगा—महात्मा जी ने उसके कटु वचन के उत्तर में अति कोमलता से कहा कि अगर तुम अपनी पतोह को मेरी बहन बनाते हो तो वह मेरी बहन ही होकर रहेगी—महात्मा जी के मुख से यह वचन निकलते ही उस औरत को मौजा आसोध में वैराग आया और अपनी चूड़ी वगैरह फोड़ फाड़ कर साधुनी बन गई और महात्माजी की सेवा तन, मन, धन से करने लगी।

और भी कई कथायें ऐसी ही महात्माजी की चमत्कारों की मशहूर हैं मगर मामूली सिद्धि शक्ति की हैं—जो गरीबदास जी ऐसे साध गुरु की अपरम्पार महिमा को नहीं शोभा देतीं।

महात्माजी के पहिनने का जामा और बंधी हुई पगड़ी और धोती जूता और लोटा और कटोरी और पलंग अब तक मौजा छुड़ानी में उनकी समाध के स्थान पर मौजूद हैं—जहाँ लोग दर्शन को जाते हैं।

संत महात्मा रैदास जी का जीवन-चरित्र

रैदास जी जाति के चमार एक भारी भक्त थे जिनका नाम हिन्दुस्तान बरन् और देशों में भी प्रसिद्ध है। यह कबीर साहिब के समय में वर्तमान थे और इस हिसाब से इनका जमाना ईसवी सन् की चौदहवीं सदी (शतक) ठहरता है।

यह महात्मा भी कबीर साहिब की तरह काशी में पैदा हुए। कहते हैं कि कबीर साहिब के साथ इनका परमार्थी संवाद कई बार हुआ जिसमें इन्होंने वेद शास्त्र आदि का मंडन और कबीर साहिब ने खंडन किया है। जो हो, पर इस ग्रंथ के देखने से तो यही मालूम होता है कि रैदास जी को वेद शास्त्रों में कुछ भी श्रद्धा न थी।

कथा है कि पहले जनम में रैदास जी बाम्हन थे। स्वामी रामानन्द जी से उपदेश लिया था और उनकी सेवा में लगे रहते थे। एक दिन अपने गुरू के भोजन के लिये एक बनिया से सामग्री ले आये जिसका व्यौहार चमारों के साथ भी था। इस हाल के जानने पर रामानन्द जी ने क्रोध से सराप दिया कि तुम चमार का जनम पावोगे। इस पर रैदास जी चोला छोड़ कर एक रग्घू नाम चमार के घर घुरबिनिया चमाइन से पैदा हुए परन्तु पूरबले जोग के बल से उनको पिछले जनम की सुध न बिसरी और अपनी माँ की छाती में मुँह न लगाया जब तक कि भगवन्त की आज्ञा से रामानन्द जी ने चमार के घर आप जाकर रैदास जी को माँ का दूध पीने की समझौती नहीं दी। स्वामी रामानन्द जी ने लड़के का नाम रविदास रक्खा, पीछे से लोग उन्हें रैदास रैदास कहने लगे।

जब रैदास जी सयाने हुए तो भक्तों और साधुओं की सेवा में सदा रहने लगे। साधु सेवा में ऐसा मन लग गया कि जो कुछ हाथ आता उन के खिलाने पिलाने और सत्कार में खर्च कर डालते। यह चाल उनके बाप रग्घू को, जो चमड़े के रोजगार से बड़ा धनी हो गया था, नहीं सुहाई और रैदास जी को अपने घर से निकाल कर पिछवाड़े की ज़मीन रहने को दे दी जहाँ छप्पर तक नहीं था। एक कौड़ी खर्च को नहीं देता था। रैदास जी वहाँ अकेले अपनी स्त्री के साथ बड़े आनन्द से रहने लगे, जूता बनाकर अपना गुजर करते और जो समय उस काम से बचता उसे भगवत-भजन में लगाते।

इन का बैराग अनूठा था। भक्तमाल में लिखा है कि इन की तंगी की दशा देख कर मालिक को दया आई और साधु के रूप में रैदास जी के पास आकर उनको पारस पत्थर दिया और उस से जूता सीने के एक लोहे के औजार को सोना बनाकर दिखा भी दिया। रैदास जी ने उस पत्थर को लेने से इनकार किया, आखिर को साधु की हट से लाचार होकर कहा कि छप्पर में खोंस दो (यह छप्पर रैदास जी ने अपने कमाई के पैसे से धीरे धीरे बनवा लिया था)

जब तेरह महीने पीछे वही साधु जी फिर आये और पत्थर का हाल पूछा तो रैदास जी ने जवाब दिया कि जहाँ खोंस गये थे वहीं देख लो मैंने नहीं छुआ है।

इसी तरह एक दिन पूजा की पिटारी में पाँच मोहर निकली, रैदास जी उसको देखकर ऐसा डरे मानो साँप हो, यहाँ तक कि पूजा से भी डरने लगे। तब भगवन्त ने आज्ञा की कि जो हमारा प्रसाद है उसका तिरस्कार मत करो। जिस पर रैदास जी को मानना पड़ा और फिर जो कुछ इस रीति से मिलता था उस को ले लिया करते थे और उस से एक धर्मशाला और मंदिर भी बनवाया जिसमें पूजा करने को बाम्हन रक्खे। यह हालत देख कर पंडितों को जलन पैदा हुई और राजा के यहाँ शिकायत की कि यह चमार होकर बाम्हनों का ढचर बनाये हुए है जिसका उसे अधिकार नहीं है इसलिये दंड का भागी है। राजा ने रैदास जी को बुलाकर हाल पूछा और उनके बचन से ऐसा प्रसन्न हुआ कि दंड देने के बदले बड़ा आदर किया।

भक्तमाल में लिखा है कि चित्तौड़ की रानी ने जो काशी में यात्रा के लिये आई थीं रैदास जी की महिमा सुनकर उनको अपना गुरू बनाया। यह गति देख कर पंडितों की आग दूनी भड़की और बड़ी धूम मचाई और रानी को पागल ठहराया। रानी ने एक सभा करके सब पंडितों को और साथ ही रैदास जी को बुलाया जहाँ बहुत बाद-विवाद हुआ—पंडित लोग जात को बड़ा ठहराते थे और रैदास जी वर्णाश्रम की तुच्छता दिखला कर भगवत-भक्ति को प्रधान करते थे; अंत को यह बात तै पाई कि भगवान् की मूर्ति जो सिंहासन पर विराजमान थी उसको आवाहन करके बुलाया जाय। जिसके पास वह आ जाय वही बड़ा। बेचारे पंडितों ने तीन पहर .तक वेदध्वनि की और मन्त्र पढ़े पर मूरत अपनी जगह से न हिली। जब रैदास जी की पारी आई और उन्होंने प्रेम और दीनभाव से प्रार्थना की तो मूरत तुरत ही सिंहासन छोड़ कर रैदास जी की गोद में आ बैठी—सब देखकर चकित हो गये।

भक्तमाल में रैदास जी की महिमा के दृष्टांत में यह भी बरनन है कि जब चित्तौड़ की रानी जिसका नाम झाली लिखा है अपनी राजधानी को लौटी तो बड़े आदर भाव से रैदास जी को बुलाया और उनके सुशोभित होने के उत्सव में नगर के बाम्हनों को बहुत कुछ दान दिया और अपने यहाँ भोजन कराने के लिये उनको नेवता दिया। बाम्हनों ने लालचबस नेवता तो मान लिया परन्तु

चमार की चेली के घर का बना हुआ भोजन करना धर्म के विरुद्ध समझ कर कोरा सीधा लेकर अपने हाथ से भोजन बनाया। जब खाने पर बैठे तो देखते क्या हैं कि हर पंगत में दो दो बाम्हनों के बीच में रैदास जी बैठे हैं—इस अचरजी कौतुक पर सब हक्के-बक्के हो गये और कितनों ने चरनों पर गिर कर रैदास जी से दीक्षा ली। रैदास जी ने अपने कंधे की खलड़ी को उधेड़ कर जनेऊ दिखलाया कि सच्चा भीतर का जनेऊ यह है।

यह कथा सर्व साधारन में मीराबाई के भोज के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है और बहुतों का विश्वास है कि यह चित्तौड़ की रानी जिसने रैदास जी से उपदेश लिया और उनका नेवता किया मीराबाई ही थीं पर इसके निर्णय की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

यह कथा भी प्रसिद्ध है कि एक बड़े रईस रैदास जी की महिमा सुन कर उनके दर्शन और सतसंग को गये। उन के आश्रम पर पहुँच कर देखा कि एक बूढ़ा चमार और उसके साथ बहुत से और चमार बैठे जूते बना रहे हैं। थोड़ी देर पीछे सतसंग हुआ और उसके उपरांत एक चमार एक बड़े जूते में भर कर रैदास जी का चरनामृत लाया और सब को बाँटा, जब रईस साहिब की पारी आई तो उन्होंने उसे ले तो लिया पर घिन मान कर अपने सिर से उछाल कर पीछे गिरा दिया जो कि उन के अँगरखे में सूख गया। जब घर लौटे तो शुद्ध होने के लिये कपड़े उतार कर भंगी को दे दिये और आप पंच गव्य स्नान किया। उसी दिन से उन को गलित कोढ़ होने लगा और भंगी की जिस ने चरनामृत पड़ा हुआ कपड़ा पहिना सोने के समान देह निकल आई और चेहरे पर बड़ा तेज आ गया। रईस साहब ने बहुत कुछ दवा की पर जब अच्छे न हुए तो अपने मुसाहिबों की सलाह से फिर रैदास जी के आश्रम पर चरनामृत की आसा में आये; उस दिन चरनामृत नहीं बँटा। तब रईस ने रैदास जी से प्रार्थना की कि चरनामृत मिले। जवाब पाया कि अब जो चरनामृत आवेगा वह केवल पानी होगा उसमें दया की मौज शामिल न होगी और मौज पर हमारा बस नहीं है। फिर कुछ दिन पीछे बहुत झुरने पछताने पर रैदास जी की दयादृष्टि से रईस अच्छा हो गया।

काशी गवर्मेन्ट संस्कृत पाठशाला के सन् १६०७ के एक परीक्षापत्र में नीचे लिखी हुई कथा संस्कृत में अनुवाद करने को छपी थी जिसे हम यहाँ लिखते हैं—

"इस संसार में वही आदमी ऊँचा कहा जाता है जो कि ऊँचा काम करे, ऊँचे घर में पैदा होने से ऊँचा नहीं कहलाता। देखो आग से धुआँ पैदा होता है, वह हवा के संग से आसमान में भी बहुत दूर तक चढ़ जाता है पर लोगों की आँख में पड़ कर तकलीफ ही देता है, इसीलिये लोग धुएँ को बुरा कहते हैं। आग से कभी कभी बहुत लोग जल कर मर जाते हैं। गाँव के गाँव राख हो जाते हैं तौ भी उस से बहुत फायदा होता है, इस लिये सब लोग उसे पसन्द करते हैं। ऊँची जाति में पैदा होने का जो लोग घमंड करते हैं उन्हें अच्छे लोग नादान समझते हैं। बनारस में एक बाम्हन किसी रघुवंसी छत्री की ओर से रोज गंगा जी को फूल पान और सोपारी चढ़ाने जाता था। एक दिन वह बाम्हन जूता खरीदने के लिये रैदास चमार की दूकान पर गया। बात बात में वहाँ पर गंगा पूजा की चर्चा चल पड़ी। रैदास ने कहा कि मैं आप को यों ही जूता देता हूँ, कृपा कर आज मेरी इस सोपारी को भी गंगा जी को चढ़ा देना। बाम्हन ने उस सोपारी को जेब में रख लिया। दूसरे दिन गंगा में नहा धो कर जजमान की सोपारी इत्यादि को चढ़ा कर पीछे से चलती बेरा जेब में से रैदास की सोपारी को निकाल कर दूर से गंगा जी में फेंका। गंगा जी ने पानी में से हाथ ऊँचा कर उस सोपारी को ले लिया। यह तमाशा देख कर वह बाम्हन कहने लगा कि सच है—

"जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि को होई॥"

रैदास जी पूरी अवस्था को पहुँच कर अर्थात् १२० बरस के होकर ब्रह्म पद को सिधारे और उनके पंथ के अनुयाइयों का विश्वास है कि यह कबीर साहिब की भाँति सदेह गुप्त हो गये बरन अपनी बानी को भी साथ ले गये !!!

गुजरात प्रान्त में इस मत के लाखों आदमी हैं जो अपने को रविदासी कहते हैं।

संत महात्मा दरिया साहब (बिहार) का जीवन-चरित्र

परम भक्त सतगुरु दरिया साहब जिनकी महिमा जगत-प्रसिद्ध है पीरनशाह के बेटे थे। पीरनशाह बड़े प्रतिष्ठित उज्जैन के छत्री थे जिनके पुरखा बक्सर के पास जगदीसपुर में राज करते थे। दरिया साहब का जन्म मुकाम धरकंधा जिला आरा में जो डुमराँव से सात कोस दक्खिन है और जहाँ उनका ननिहाल था

दरिया साहब (बिहार वाले)
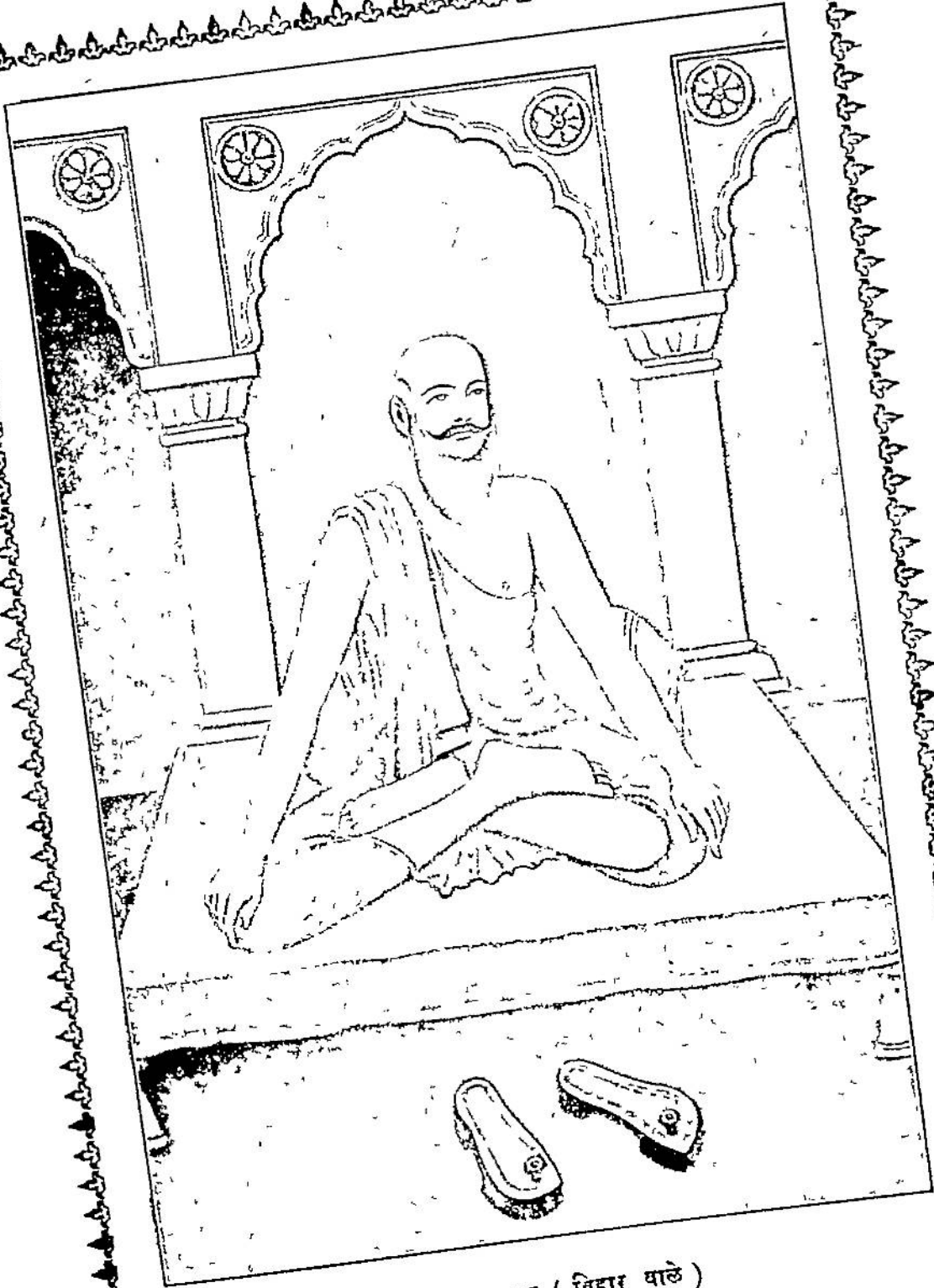
संम्वत सोलह सौ इक्कानवे—कातिक पूरन जान।
मातु गर्व ते प्रगट भये—रहे दो घरी आन॥

हुआ था। इनके जन्म का साल इनके किसी ग्रंथ में नहीं दिया है पर दरिया सागर के अन्त में लिखा है कि दरिया साहब बिक्रमी सम्बत १८३७ भादों बदी चौथ को परम धाम को सिधारे और दरिया पंथियों में प्रसिद्ध है कि वह इस धरती पर १०६ बरस तक रहे—इस हिसाब से इनका जन्म संवत १७३१ शाके १५६६ सन् ईसवी १६७४ में होना पाया जाता है।

दरिया साहब कबीर साहब के दूसरे अवतार कहे जाते हैं। "ज्ञान दीपक" के अनुसार एक महीने की अवस्था में उनको भगवंत ने साधु रूप में उनकी माता की गोद में दर्शन दिया और "दरिया" नाम बख़्शा। नौ बरस की उमर में कुल की रीति से दरिया साहब का ब्याह हुआ परन्तु कहा जाता है कि उन्होंने अपनी स्त्री से कभी प्रसंग नहीं किया। पन्द्रहवें बरस में उनको बैराग हुआ और बीस बरस की उमर में भक्ति का पूरा प्रकाश हुआ और महिमा फैली। तीस बरस की अवस्था में दरिया साहब ने सतसंग कराना, जीवों को चेताना और अपने मत का उपदेश और मन्त्र देना शुरू किया जिसको उनके मत वाले "तख्त पर बैठना" कहते हैं। इनके मत में बेद और सर्गुन (अर्थात अवतार सरूपों की पूजा, मूर्त्ति पूजा, तीर्थ, ब्रत, नेम आचार जाति भेद, इत्यादि) का खंडन है और मांस, मदिरा और हर तरह का नशा मने किया है केवल निर्गुन और एक सतपुरुष का इष्ट दृढ़ाया है, यहाँ तक कि सोहं, ओं, इत्यादि सत्यलोक के नीचे के लोकों के धुन्यात्मक नामों का भी निषेद किया है, इसी कारण पंडितों को इनसे बड़ा विरोध पैदा हुआ और कोई युक्ति इनकी निन्दा फैलाने और दुख देने की उठा न रक्खी।

बाजे बाजे तरीके दरिया पंथियों में ऐसे जारी हैं जो मुसलमानी चाल से मिलते हैं जैसे मालिक से प्रार्थना की रीति खड़े होकर झुक कर आदाब बजा लाने की जिसे वह कोरनिश कहते हैं और फिर बैठ कर मत्था टेकने की जिसे वह सिरदा (अर्थात सिजदा) कहते हैं मुसलमानों के नमाज के बाहरी तरीके से मिलते हैं। इसी तरह मट्टी का हुक्का जिसको "रखना" कहते हैं और भरुका पानी पीने का हर एक साधू अपने पास रखता है चाहे उनको जरूरत हो या न हो।

दरिया साहब उमर भर घरकंधा में रहे यद्यपि थोड़े दिनों के लिये काशी मगहर (ज़िला बस्ती), बाईसी (ज़िला ग़ाज़ीपुर) हरदी व लहठान (ज़िला आरा) को यात्रा और उपदेश देने के लिये गये थे। उनके ३६ खास चेले थे

1553

जिनमें दलदास जी प्रधान थे। धरकंधा में इस पंथ का तख़्त है और उसकी शाखा चार गद्दियाँ तेलपा, दंमी, मिर्ज़ापुर, (ज़िला छपरा) और मनुवाँ चौकी (ज़िला मुज़फ्फ़रपुर) में हैं।

दरिया साहब ने बहुत से ग्रन्थ रचे जिनमें यह "दरिया सागर" और "ज्ञान दीपक" प्रधान हैं। दरिया सागर उनका पहिला ग्रन्थ है जो छप चुका है। दूसरे ग्रन्थ यह हैं—ज्ञान रत्न, ज्ञान मूल, ज्ञान स्वरोदय, निर्भय ज्ञान, अग्र ज्ञान, विवेक सागर, ब्रह्म ज्ञान, भक्तिहेत, अगरसार, प्रेम मूला, काल चरित्र, मूरत उखाड़, गर्भ चेतावन, दरिया नामा, गनेश गोष्ठी, रमेशर गोष्ठी, बीजक और सतसइया। दो ग्रन्थ और रचे थे जो बेपता हैं। दरिया साहब के पंथ के साधू और गृहस्थ बिहार, तिरहुत, गोरखपुर, बलिया और कटक में बहुत हैं, यों तो थोड़े बहुत हिन्दुस्तान भर में फैले हैं।

यह दरिया साहब और माड़वाड़ के तरन तारन गाँव के निवासी दरिया साहब एक नहीं हैं। दोनों महात्माओं के इष्ट और बानी में बड़ा भेद है जैसा कि दूसरे दरिया साहब की बानी के देखने से (जो हम छाप चुके हैं) जान पड़ता है—दोनों की बानियाँ ऊँचे घाट की पर अपने अपने ढंग में निराली हैं। सबसे अनूठी बात यह है कि दोनों महात्मा का नाम एक ही था, दोनों शब्द मार्गी थे और दोनों एक ही समय में बयासी बरस तक रहे यद्यपि जुदा जुदा देशों में एक दूसरे से बहुत दूर पर।

संत महात्मा दरिया साहब (मारवाड़ वाले) का जीवन-चरित्र

दरिया साहब ने मारवाड़ के जैतारन नामक गाँव में भादों बदी अष्टमी संवत् १७३३ (विक्रमी) के दिन एक मुसलमान कुल में जन्म लिया और अगहन सुदी पूनो संवत १८१५ को ८२ बरस से अधिक अवस्था में परलोक को सिधारे। उस समय महाराज बख़्तसिंह जी मारवाड़ के राजा थे। दरिया साहब के बाप माँ जाति के धुनियाँ थे जैसा कि उन्हों ने एक पद में कहा है।

जो धुनियाँ तौ भी मैं राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना,
तुम तो हौ सिर ताज हमारा।

दरिया साहब की सात ही बरस की उमर में उनके पिता का अंतकाल हुआ जिस से वह उसी देश के रैन नामक गाँव, पर-गाना मेड़ता में अपने नाना के घर जाकर रहे। उनके नाना का नाम कमीच था।

कहते हैं कि महाराज बख़्तसिंह जी को एक असाध रोग था जिस का इलाज करते करते वह हार गये। अंत में भाग्य से दरिया साहब के आश्रम पर रैन गाँव में जा कर बड़ी दीनता से बिनती की, जिस पर दरिया साहब ने दया करके अपने गुरमुख चेले सुखरामदास जी के द्वारा उन को उपदेश दिया और आरोग हो गये। सुखरामदास जी जाति के सिकलीगर लोहार थे जिन का स्थान रैन में अब तक मोजूद है जहाँ हर साल मेला होता है।

दरिया साहब के गुरु प्रेमजी थे जो बीकानेर के गाँव खियानूसर में रहते थे।

मारवाड़ (राजपूताना) में दरिया साहब के मत के हजारों आदमी हैं। दरिया पंथियों के विश्वास के अनुसार नीचे लिखा हुआ दोहा महात्मा दादू साहब ने दरिया साहब के जन्म लेने से एक सौ बरस पहिले कहा था—

देह पड़ंताँ दादू कहै, सौ बरसाँ इक संत।
रैन नगर में परगटै, तारै जीव अनंत॥

यह दरिया साहब उन दरिया साहब से बिल्कुल निराले हैं जो बिहार प्रांत में डुमराँव के पास के धरकंधा नामक गाँव में इसी समय में बिराजमान थे और जिन का स्वर्गवास होना १०६ बरस की उमर में संवत १८३७ में पाया जाता है। इस हिसाब से मारवाड़ वाले दरिया साहब बिहार वाले दरिया साहब के दो बरस पीछे पैदा हुए और २२ बरस पहिले गुप्त हुए। इन दोनों महात्माओं की बानी और इष्ट के नाम में इतना भेद है कि दोनों कदापि एक नहीं ठहर सकते। पर यह अनूठी बात है कि दोनों महात्मा नीच जाति के मुसलमानी माता के पेट से जन्मे (क्योंकि मारवाड़ वाले महात्मा की माँ धुनियाइन थीं और बिहार वाले की दरज़िन) दोनों महात्मा का नाम एक ही था, दोनों शब्द-मार्गी थे और एक ही समय में बयासी बरस तक रहे, यद्यपि जुदा २ देशों में एक दूसरे से बहुत दूर पर रहे। बिहार के दरिया साहब के पंथ वाले दूसरे दरिया साहब के पंथ वालों से गिनती में अधिक हैं; उन की बानी भी जो ऊँचे घाट की और अति मनोहर है हमको मिली है जो उन के जीवन-चरित्र के साथ छपी है।

संत महात्मा भीखा साहब का जीवन-चरित्र

भीखा साहब जिनका घरेलू नाम भीखानंद था जाति के ब्राह्मन चौबे थे। ज़िला आज़मगढ़ के खानपुर बोहना नाम के गाँव में उन्हों ने जन्म लिया जिसे दो सौ बरस के करीब हुए।

बाल अवस्था ही से उन को परमार्थ और साध संग का इतना उत्साह था कि बारह बरस की उमर में घर बार त्याग कर पूरे गुरू और सच्चे मत की खोज में काशी को गये पर वहाँ कुछ न पाकर लौटे रास्ते में पता लगा कि गाजीपुर ज़िले के भुरकुड़ा गाँव में एक शब्द अभ्यासी महात्मा गुलाल साहब दर्शन के योग्य हैं। फिर तो यह वहाँ को दौड़े और उन से उपदेश लिया। इस बात को भीखा साहब ने अपने एक शब्द में लिखा है इनकी पुस्तक यहाँ छप चुकी है—(पहिला शब्द पृष्ठ १४-१५ में देखिये)

भीखा साहब अनुमान बारह बरस तक तन मन धन से अपने गुरू गुलाल साहब की रात दिन सेवा और सतसंग करते रहे। इस के पीछे जब गुलाल साहब गुप्त हुए तब इन को उन की गद्दी मिली और चौबीस पच्चीस बरस तक अपने सतसंग और उपदेश से जीवों को चेताते और परमारथ का धन लुटाते रहे। भुरकुड़ा में जब से बारह बरस की अवस्था में यह आये कहीं बाहर नहीं गये और वहीं अनुमान पचास बरस की उमर में शरीर त्याग किया। भुरकुड़ा में इन की समाधि और इन के गुरू गुलाल साहब और दादा-गुरू बुल्ला साहब की समाधें मौजूद हैं जहाँ विजय-दसमी पर बड़ा भारी मेला होता है।

भीखा साहब के पंथ में बहुत से लोग हैं और अकेले भुरकुड़ा गाँव और बलिया ज़िले के बड़ागाँव में और उन के आस पास उस मति के कई हज़ार अनुयायी रहते हैं।

हम ने इन दोनों स्थानों और दूसरी जगहों और ग्रंथों से भीखा साहब के जन्म लेने और गुप्त होने का समय जानना चाहा पर कहीं ठीक ठीक पता न लगा। परन्तु एक हस्त-लिखित पुस्तक भुरकुड़ा में मौजूद है जिसे लोग कहते हैं कि गुलाल साहब ने भीखा साहब की मौजूदगी में लिखा और दोनों का छाप बहुतेरे पदों में मिलने से इस कथन का प्रमान होता है। इस ग्रंथ में लिखा है कि उसका बनाना विक्रमी सम्बत् १७८८ में आरंभ हुआ और फागुन सुदी ५ बृहस्पतिवार

सम्वत् १७९२ को समाप्त हुआ। इस हिसाब से भीखा साहब के जन्म का साल अनुमान सम्वत् १७७० और गुप्त होने का १८२० ठहरता है।

भीखा साहब की पूरी साध गति थी जैसा कि उस भेद से जो उन्हों ने अपनी बानी में दिया है प्रगट होता है। इन के कई एक ग्रंथ हैं जिन में से एक का नाम राम-जहाज है। यह एक भारी पुस्तक है।

भीखा साहब के सम्बन्ध में बहुत सी लीला और चमत्कार मशहूर हैं जिन सब के लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं है क्योंकि कितनी कथायें लोग महात्माओं के गुप्त होने पर गढ़ लेते हैं जिनसे पूरे महात्मा और भक्तजन की महिमा समझदारों की दृष्टि में रत्ती भर नहीं बढ़ती बल्कि मामूली आदमी वाह वाह करते हैं। तौ भी दो चार कथा दृष्टांत की तरह यहाँ लिखी जाती हैं।

(१) एक बार कीनाराम औघड़ जिनको सिद्धि शक्ति प्राप्त थी इनसे मिलने गये और पीने को मदिरा माँगी। भीखा साहब ने जवाब दिया कि हमारे यहाँ मदिरा का कहाँ गुज़र है इसपर कीनाराम ने ऐसा खेल दिखलाया कि भीखा साहब के स्थान पर जहाँ जहाँ पानी था सब मदिरा हो गया। थोड़ी देर पीछे भीखा साहब ने पानी पीने को अपने एक सेवक से पानी माँगा उसने डर कर उत्तर दिया कि सब पानी मदिरा हो गया है। भीखा साहब ने कहा लावो वह सब जल है, जब लाया गया तब पानी हो गया।

(२) एक दिन एक नंगे साधू पहुँचे और खाने को मथुरा का पेड़ा और पीने को तिरवेनी का जल माँगा। भीखा साहब ने कहा कि यह तो नहीं है तब साधू ने अपनी सिद्धि शक्ति से बहुत सा पैदा कर दिया और सब को बाँटा पर भीखा साहब के लिये न बचा। भीखा साहब ने कहा कि हम को भी दो पर सिद्धि ने लाख सिर मारा पेड़ा और जल उनके लिये न आ सका और उसका अंडकोष बेहद बढ़ गया। तब भीखा साहब के चरनों पर गिरा और वह अंग ठीक हो गया जिसपर भीखा साहेब की आज्ञानुसार सिद्धि ने वस्त्र धारण किया।

(३) एक दिन एक भेष आये। रात को उनके खाने को लाया गया तो कहा कि हम दिन ही को खाना खाते हैं इस पर भीखा साहब ने ऐसी मौज की कि थोड़ी देर को दिन का प्रकाश हो गया।

(४) एक दिन एक मौनी बाबा सिंह पर सवार हो कर उनसे मिलने आये। उस समय भीखा साहब एक भीत पर बैठे दातून कर रहे थे, जब बाबाजी के इस

ठाठ से आने का हाल कहा गया तो बोले कि हमारे पास तो कोई सवारी नहीं है और साधू की अगवानी करना ज़रूर है, चल भीत तूही ले चल। इस पर वह दीवार चली। मौनीजी यह देख कर उनके चरनों पर गिरे।

ऐसी कितनी कथायें कही जाती हैं पर वह सब भीखा साहब सरीखे साधगुरू के लिये महा तुच्छ हैं।

एक वंशावली वृक्ष भीखा साहब के गुरू घराने का छापा जाता है जिसे बड़ागाँव, ज़िला बलिया के महंत ने हमें कृपा कर के दिया था। उससे यह जान पड़ता है कि जगजीवन साहब जिनकी अति कोमल और दीनतामय बानी हम छाप चुके हैं भीखा साहब के गुरू के गुरुभाई थे और पलटू साहब के (जिनकी बानी भी छप चुकी है) भीखा साहब दादा-गुरू थे। यह वंशावली प्रमाणिक है जिसकी तसदीक भुरकुड़ा से भी करली गई है—
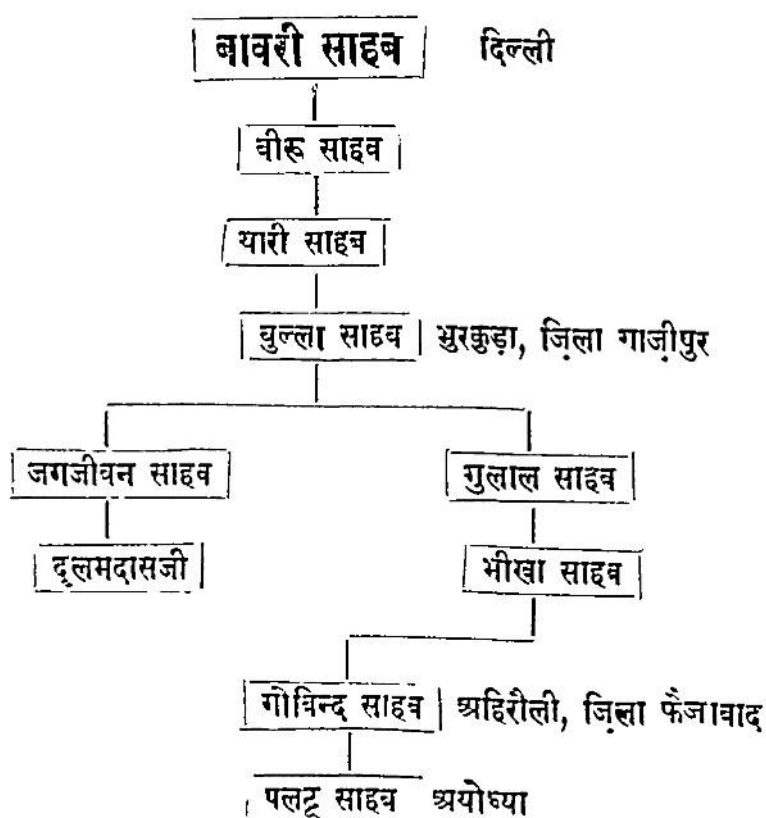
संत महात्मा गुलाल साहब का जीवन-चरित्र

गुलाल साहब जाति के छत्री बुल्ला साहब के गुरुमुख चेले, जगजीवन साहब के गुरुभाई, और भीखा साहब के गुरु थे जैसा कि उस वंशावली से जो दूसरे पृष्ठ पर दी हुई है प्रगट होता। इनके जीवन का कुछ हाल नहीं मिलता यद्यपि इन के स्थान भुरकुड़ा जिला गाजीपुर और दूसरी जगहों में खोज की गई। लेकिन जोकि यह जगजीवन साहब के सहकाली थे इनके जीवन का समय विक्रमी सम्वत् १७५० और १८०० के दरमियान में पाया जाता है। \

गुलाल साहब ज़िमींदार थे और इनके गुरु बुल्ला साहब जिनका असली नाम बुलाकीराम था पहले उनके नौकर हल चलाने वगैरह के काम पर थे। बुल्ला साहब जब किसी काम को जाते, भजन ध्यान में लग जाने से अक्सर देर कर देते थे। इन की सुस्ती की शिकायत लोगों ने गुलाल साहब से की और गुलाल साहब कई बार इन पर खफ़ा हुए। एक दिन का ज़िक्र है कि बुल्ला साहब हल चलाने को गये थे और वहाँ भगवंत का ध्यान और मानसी साध सेवा में लग गये। उसी समय गुलाल साहब मौक़े पर पहुँच गये और बैलों को हल के साथ फिरते और बुल्ला साहब को खेत की मेंड़ पर आँख बंद किये हुए बैठा देख कर समझे कि वह औंघ रहे हैं तो उनको क्रोध आया और क्रोध में भर कर एक लात मारी। बुल्ला साहब एक बारगी चौंक उठे और उनके हाथ से दही छलक पड़ा। यह कौतुक देख कर गुलाल साहब हक्के-बक्के हो गये क्योंकि पहले उन्हों ने बुल्ला साहब के हाथ में दही नहीं देखा था। पर बुल्ला साहब बड़ी आधीनता से गुलाल साहब से बोले कि मेरा अपराध छिमा करो मैं साधों की सेवा में लग गया था और भोजन परोस चुका था केवल दही बाकी था उसे परोस ही रहा था जो आप के हिला देने से छलक गया। यह गति अपने नौकर की देख कर गुलाल साहब चरनों पर गिरे और उनको अपना गुरु धारन किया। गुलाल साहब तअल्लुका बसहरि ज़िला गाज़ीपुर के ज़िमींदार थे और वहीं पैदा हुए और गृहस्थ आश्रम में रह कर वहीं चोला छोड़ा। इसी तअल्लुक़े के एक गाँव का नाम भुरकुड़ा है जहाँ गुलाल साहब सतसंग करते व कराते रहे। गुलाल साहब की साध गति थी और उनका तीव्र बैराग और प्रचँड भक्ति उनकी अति कोमल और मधुर बानी से टपकती है॥
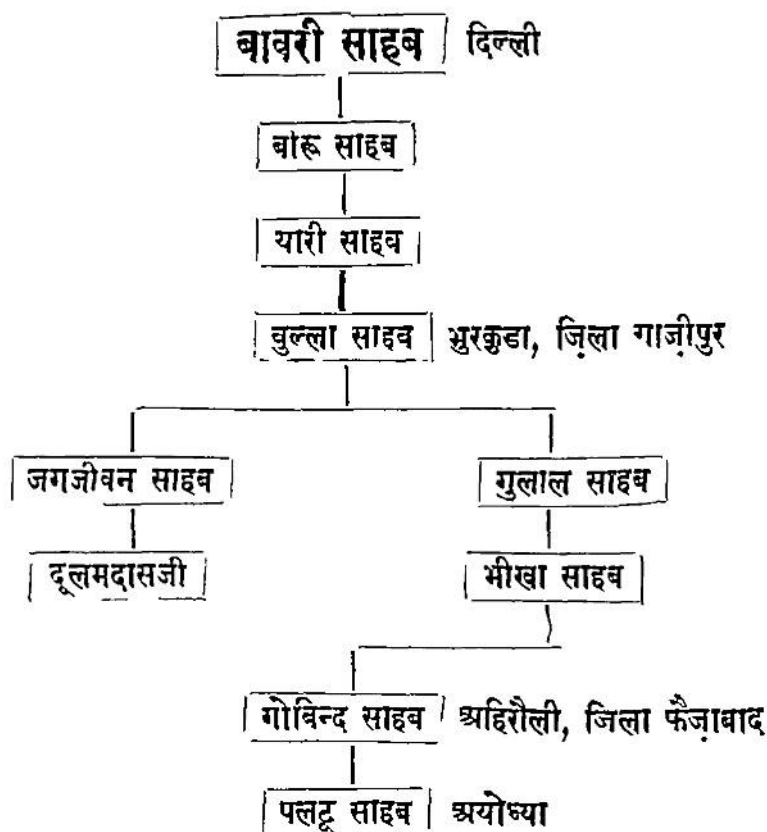
संत महात्मा मलूकदासजी का जीवन-चरित्र

बाबा मलूकदासजी ज़िला इलाहाबाद के कड़ा नामक गाँव में बैसाख बदी ५ सम्वत् १६३१ बिक्रमी में लाला सुन्दरदास खत्री ककड़ के घर प्रगट हुए। जब पाँच बरस के हुए तो मकान से बाहर गली में खेला करते थे और खेल के दर्मियान जो कुछ काँटा कूड़ा करकट गली में पड़ा होता था उसे उठाकर एक कोने में डाल देते कि किसी के पाँव में लग कर कष्ट न हो। एक दिन की बात है कि जब वह मामूल मुवाफ़िक़ खेल रहे थे एक पूरे महात्मा उसी गली में आ निकले और उनको देख कर लोगों से पूछा कि यह किसका लड़का है और यह सुनकर कि यह सुन्दरदास का बेटा है बाप को बुलवाया और कहा कि अचरज है कि यह लड़का गली में इस तरह अकेला खेल रहा है इसकी आजानुबाहु

यानी लम्बी भुजा इस बात की सूचक हैं कि या तो यह सात दीप का अखंड राजा हो या ऊँची साध गति को प्राप्त हो—बाबा मलूकदासजी की इतनी लम्बी बाँहें थीं जो खड़े होने से घुटने के नीचे पहुँचती थीं। इस बात को सुनकर सुन्दरदास तो अचरज में आकर हक्के बक्के हो गये पर बाबा मलूकदास बोले कि महात्माजी आप ठीक कहते हैं।

मलूकदासजी साध सेवा लड़कपन ही से बड़ी नेष्ठा से करते थे, जो साधू और भूखे आते उनका सम्मान और खाने पीने की फिकर रखते। एक दिन एक मंडली साधुओं की आई और भोजन माँगा। बाबाजी ने घर के भंडार घर में सेंध लगा कर जो कुछ सामग्री थी निकाल ली और आधुओं को खिला दिया। जब उनकी माँ रसोई के समय सीधा निकालने गईं तो वहाँ कुछ न पाया बेचारी रोने लगीं कि अब घर के लिए कहाँ से खाना बनाऊँ और बोलीं कि यह काम मल्लू का है। इसी दर्मियान में बाबा मलूकदासजी आ पहुँचे और पूछा कि माँ क्यों रोती है। माँ बोली कि बेटा तुम्हारी करतूत पर रोती हूँ कि भंडारे की सब सामग्री साधुओं को खिलाकर बाप्र माँ को भूखा रक्खोगे। बाबाजी बोले कि मैंने तो एक दाना नहीं लिया है जिस पर माँ झुँझला कर उन्हें भंडारघर में पकड़ ले गई कि देख सब बर्तन तो खाली पड़े हैं लेकिन वहाँ पहुँच कर जो देखा तो सब सामग्री ज्यों की त्यों भरी पाई।

जब इनकी अवस्था दस ग्यारह बरस की हुई तो बाप ने इन्हें व्यापार में लगाना चाहा और कम्मल थोक में लेकर कहा कि इनको बाजार में बेच लाया करो। देहात में हर आठवें दिन पैंठ लगती है सो यह आठवें दिन कम्मल बेचने जाते थे और इस दर्मियान में कोई साधू या गरीब इनसे माँगता तो उसे यौंही दे देते।

एक बार यह एक दूर के गाँव में कम्मल बेचने गये लेकिन उस दिन न तो कोई कम्मल बिका और न कोई मँगता मिला जिसे मुफ्त दे देते, पूरा गट्ठर कम्मलों का कड़ी धूप में सिर पर लाद कर घर लाने में थक गये और इसलिये रास्ते में एक नीम के पेड़ की छाया में बैठ गये कि एक मजदूर आया और कहा कि एक टका पर हम तुम्हारा गट्ठर घर पर पहुँचा देंगे। मजदूर तेज चाल से आगे बढ़ गया और बाबाजी आप बेफिकर भजन करते हुए घर लौटे। मजदूर के अकेले गठरी लाने पर इनकी माँ को सन्देह हुआ कि कहीं कुछ कम्मल निकाल न लिये हों इसलिये उसे थोड़ा सा खाना देकर खिलाने के बहाने कोठरी

कट्टर था हुक्म दिया कि तीन ओहदी तुर्त जायँ और बाबा मलूकदास को जिस तरह से बैठे हों वैसे ही लाकर हाज़िर करें। उन तीन ओहदियों में दो भले आदमी थे और एक लुच्चा जिसने हठ किया कि जिस सूरत में बाबाजी बैठे होंगे उसी दम पकड़ लावेंगे परन्तु मौज से यह तीसरा ओहदी रास्ते ही में मर गया। बाकी दो बाबाजी के आश्रम पर पहुँचे और बाबाजी के इस कहने को कि दूसरे दिन सवेरे उनके साथ चलेंगे मंजूर किया। लेकिन पहिले ही दिन शाम को बाबाजी सतसंग से अन्तर ध्यान हो कर दिल्ली जा पहुँचे और बादशाही महल में जहाँ बादशाह अपनी बेगम के साथ बैठे थे जा खड़े हुए। बादशाह ने घबराकर पूछा कि तुम कौन हो बाबाजी ने जवाब दिया कि मलूका जिसको आपने याद किया है। बेगम हट गई और बादशाह ने बाबाजी को बड़े आदर से बैठाया और उनकी जाति पूछी बाबाजी, ने जवाब दिया कि फ़क़ीरों के जात पाँत नहीं होती इस पर बादशाह ने उनके खाने को खिचड़ी पकाने का हुक्म दिया जब पक कर डेगची आई और खोली गई तो उसमें से खिचड़ी के बदले कुत्ते के पिल्ले जीते हुए निकल आये जिन्हें देखकर बाबाजी ने बादशाह से पूछा कि क्या आप यही खिचड़ी खाते हैं। बादशाह बावरची पर बहुत क्रोधित हुये और दूसरी खिचड़ी बनाने का हुक्म दिया। इस बार डेगची खोलने पर उसमें से राख निकली। बाबाजी बोले कि यह खाना फ़क़ीरों के योग्य है और उसमें से एक चिटकी राख लेकर फूँक दिया तो ऐसी आँधी पानी दिल्ली भर में आई कि शहर ग़ारत होने लगा। फिर बादशाह की प्रार्थना पर बाबाजी ने दया करके वह उत्पात हटा लिया। ऐसे ही लिखा है कि आलमगीर ने कुएँ के मुँह पर खड़े होकर नमाज़ पढ़ी जिसके जवाब में बाबाजी ने कूंये के बीच में बेसहारे लटकते हुए भजन किया। इन सब चमत्कारों को देखकर शाह आलमगीर को विश्वास हुआ कि बाबा मलूकदास पहुँचे हुये साहेब कमाल हैं और उनसे बड़ी दीनता के साथ कुछ माँगने को कहा परन्तु बाबाजी ने इनकार कर दिया, फिर बादशाह के बहुत गिड़गिड़ाने पर बोले कि अच्छा एक तो जजिया टिकस जो हिन्दुओं पर लगा है उस को कड़ा के लिये माफ़ करदो, दूसरे दोनों ओहदियों को एक एक सूबा बख्श दो और परवाना लिख दो कि मुझको यहाँ न लावें। बादशाह ने उसी दम यह दोनों हुक्म लिखकर बाबाजी के हवाले किया जिनको लेकर बाबाजी सतसङ्ग में आधी रात को फिर प्रगट हुए और अँगोछा जिसको सिर से पैर तक डाले रहा करते थे उठाकर सतसंगियों से बोले कि आज बड़ी देर होगई अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। सवेरे दोनों ओहदियों को शाही परवाना दिखलाया उनमें से एक तो सूबेदारी के लालच से

बाबा मलूक दासजी

अपने मुख्य चेलों के साथ

लौट आया लेकिन दूसरे ने कहा कि मैं ऐसा दरबार छोड़कर बादशाहत मिले तो उसको भी धूल समझता हूँ—इस दूसरे ओहदी की क़बर आज तक बाबाजी की समाधि के पास मौजूद है।

(४) बाबाजी अपना मकान बनवा रहे थे उसमें बहुत से मजदूर दब गये जब निकाले गये तो सब जीते निकले और बयान किया कि बाबाजी की सूरत के एक आदमी ने हमारी दबी हुई दशा में प्रगट होकर रक्षा की।

एक अहीरन का एकलौता लड़का मर गया माँ के बहुत रोने और प्रार्थना करने पर बाबाजी ने अपनी उँगली चीर कर ज़रासा लोहू लड़के के मुँह में डाल कर जिला दिया।

बाबा मलूकदास के गुरू विट्ठलदास द्राविड़ देश के एक महात्मा थे। बाबाजी गृहस्त आश्रम में थे और उनके एक बेटी हुई, परन्तु थोड़े ही काल में स्त्री और पुत्री दोनों का शरीर त्याग हो गया।

सम्वत् १७३६ में १०८ बरस की अवस्था को प्राप्त होकर बाबाजी ने चोला छोड़ा। गुप्त होने के छ महीना पहिले उन्होंने अपने भतीजे रामसनेही से कहा कि तुम हमारी गद्दी पर बैठो। उसने अपनी असमरत्थता बयान की जिस पर बाबाजी ने ढारस दी कि ताक़त बख्शी जायगी तब वह गद्दी पर बैठे और बाबाजी के बारहों गुरुमुख चेलों ने जो एक से एक बढ़कर थे आकर उनको मत्था टेका और सेवा में लगे।

जब बाबाजी के चोला छोड़ने का दिन आया तो उन्होंने अपने चेलों और कुटुम्बियों को बुलाकर कहा कि दोपहर को जब तुम लोगों के अंतर में घंटा और संख का शब्द गाजने लगे तब समझना कि हमने चोला छोड़ दिया और हमारे शरीर को गंगा में प्रवाह कर देना, जलाना मत, सो इस आज्ञा का पूरे तौर पर पालन किया गया और कड़े में उनकी समाधि बना दी गई।

कहते हैं कि बाबाजी का मृतक शरीर पहिले प्रयाग के घाट पर ठहरा और एक घाटिये से पीने को पानी माँगा और फिर डुबकी मार कर काशी में निकला और वहाँ भी पानी और फिर क़लम दवात माँगी जिससे लिख दिया कि मलूका काशी पहुँचा, वहाँ से ग़ोता लगाकर जगन्नाथपुरी में पहुँचा। जगन्नाथजी ने अपने पंडों को स्वप्न दिया कि समुद्र तट पर एक रथी है उसे उठा लाओ। जब वह रथी आई तो पंडे उसे मूर्ति के सन्मुख रख कर आप बाहर निकल आये और मंदिर के पट आपसे आप बंद हो गये। बाबाजी ने जगन्नाथजी से प्रार्थना की

कि हमारे विश्राम को आपके पनाले के पास का स्थान और भोजन को आपके भोग के दाल चावल के पछोरन किनका का रोट और तरकारी के छीलन की भाजी मिले जगन्नाथजी ने स्वीकार करके आज्ञा दी कि हमारे भोग से बढ़कर सवाद तुम्हारे भोग में होगा। जगन्नाथजी के पनाले के पास मलूकदासजी का स्थान अब तक मौजूद है और उनके नाम का रोट अब तक जारी है, जो यात्रियों को जगन्नाथजी के भोग के साथ प्रसाद में मिलता है।

बाबा मलूकदासजी के पंथ की मुख्य गद्दियाँ मौज़ा कड़ा, जिला प्रयाग, जैपुर, इस्फ़हाबाद, गुजरात, मुलतान, पटना (बिहार), सीताकोयल (दक्खिन), कलापुर, नैपाल और काबुल में हैं। उनके रचे हुए ग्रन्थ भी कितने ही हैं जिन में मुख्य 'रत्नखान' और 'ज्ञानबोध' समझे जाते हैं परन्तु वह ऐसे हिन्दी अक्षर में हैं जिन्हें उनके कुटुम्बवाले भी स्वयं नहीं पढ़ सकते और न उनके पढ़ने का जतन करते हैं छपवाने की बात तो दूर है।

यह थोड़े से चुने हुए शब्द और साखियाँ जो छापी गई हैं हमको कृपा पूर्वक बाबाजी के परम भक्त लाला रामचरनदासजी मेहरोत्रा खत्री कड़ा वाले (बाबू शिवप्रसादजी अकौन्टेन्ट इलाहाबाद बंक के पिता) ने बाबाजी के असल दस्तखती पुस्तक से नकल करा दी हैं जिसके लिये हम उनको अनेक धन्यवाद देते हैं।

संत महात्मा यारी साहब का जीवन-चरित्र

यारी साहब के जीवन का हाल बहुत खोज करने पर भी कुछ नहीं मिलता सिवाय इसके कि वह जाति के मुसलमान थे और दिल्ली में अपने गुरू बीरू साहब की सेवा में रहते थे और उनके चोला छोड़ने पर उसी जगह बने रहकर अपना सतसंग कराने लगे। दिल्ली में यारी साहब की समाध मौजूद है।

उनके इस संसार में रहने का समय दर्मियान विक्रमी सम्वत् १७२५ और १७८० के पाया जाता है।

यारी साहब के बुल्ला साहब गुरुमुख चेले थे जो गुलाल साहब के गुरू और भीखा साहब के दादागुरू थे, जैसा कि आगे दी हुई वंशावली से जान पड़ता है। चार चेले उनके और प्रसिद्ध थे—केशवदास जी, सूफ़ी शाह, शेखन शाह और हस्त मुहम्मद शाह।

यारी साहब की बानी कहीं नहीं मिलती, जो शब्द-इनके छपे हैं वह बड़ी खोज से थोड़ा थोड़ा करके दिल्ली, गाजीपुर और बलिया के जिलों से मिले हैं। इन महात्मा की बड़ी ऊँची गति और प्रचंड भक्ति और शब्द मार्गी होना उनकी बानी के अंग अंग से झलकता है—सब पद अति कोमल, प्रेम रस में पगे और अंतरी भेद से भरे हुए हैं और जैसा कि उन के शब्दों के संग्रह का नाम "रत्नावली" है, सचमुच हर एक पद उसका एक अनमोल रत्न है। इनकी बानी पुस्तक रूप में छपी है मँगा कर पढ़ें।

यारी साहब के नाम से कोई पंथ नहीं चला जैसा कि उन्हीं के गुरू घराने में बहुत समय पीछे जगजीवन साहब और भीखा साहब और पलटू साहब के नाम से पंथ चले॥
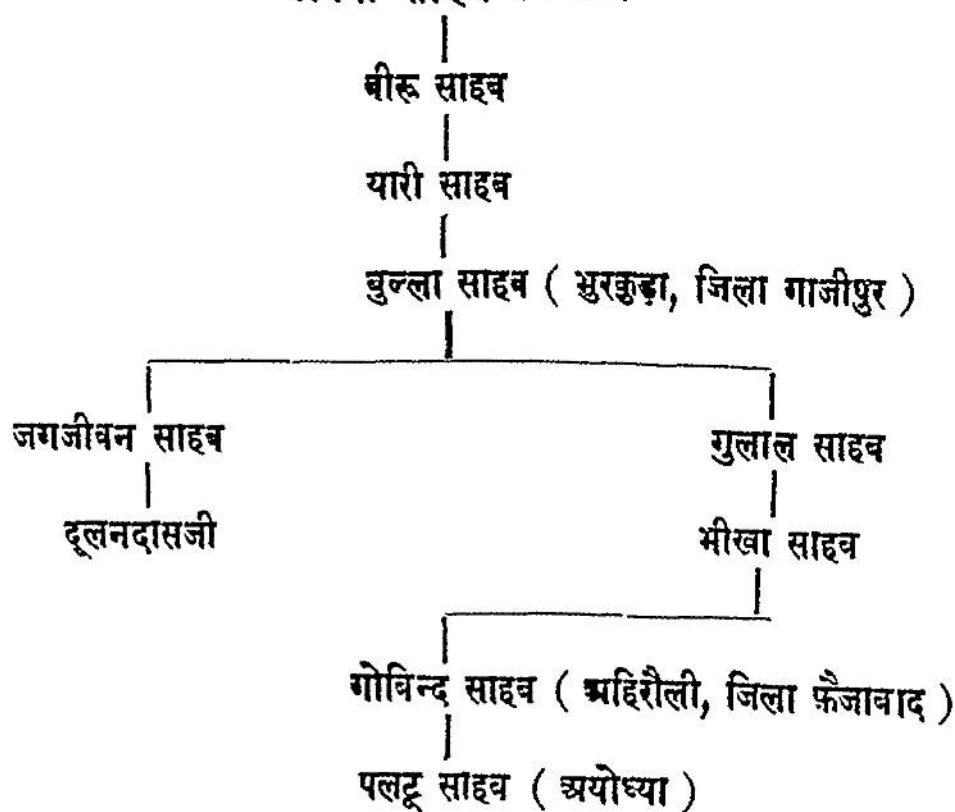
संत महात्मा बुल्ला साहिब का जीवन-चरित्र

बुल्ला साहिब यारी साहिब के गुरुमुख चेले और जगजीवन साहिब व गुलाल साहिब के गुरू थे। यह जाति के कुनबी थे और असल नाम इनका बुलाकीराम था। इन्होंने भुरकुड़ा गाँव ज़िला गाज़ीपुर में अपना सतसंग चालू किया जहाँ इनके बाद गुलाल साहिब और भीखा साहिब भी सतसंग कराते रहे

और अब तक वहाँ तीनों की समाधें भी मौजूद हैं। इनके जीवन का समय विक्रमी सम्वत् १७५० और १८२५ के बीच जान पड़ता है।

जैसा कि गुलाल साहिब के जीवन-चरित्र में लिखा गया है बुल्ला साहिब पहले गुलाल साहिब के नौकर थे और हल चलाने के काम पर तैनात थे। बुल्ला साहिब जब किसी काम को जाते तो भजन ध्यान में लग जाने से अकसर देर कर देते थे। इनकी सुस्ती की शिकायत लोगों ने गुलाल साहिब से की और गुलाल साहिब कई बार इन पर नाराज हुए। एक दिन की बात है कि बुल्ला साहिब हल चलाने को गये थे और वहाँ भगवंत के ध्यान और मानसी साध सेवा में लग गये। उसी समय गुलाल साहिब मौके पर पहुँच गये और बैलों को हल के साथ फिरते और बुल्ला साहिब को खेत की मेंड़ पर आँख बंद किये हुए बैठा देखकर समझे कि वह ऊँघ रहे हैं और क्रोध में भरकर एक लात मारी। बुल्ला साहिब एकबारगी चौंक उठे और उनके हाथ से दही छलक पड़ा। यह कौतुक देखकर गुलाल साहिब हक्के बक्के हो गये क्योंकि पहले उन्होंने बुल्ला साहिब के हाथ में दही नहीं देखा था। पर बुल्ला साहिब बड़ी आधीनता से गुलाल साहिब से बोले कि मेरा अपराध छमा करो मैं साधुओं की सेवा में लग गया था और भोजन परोस चुका था केवल दही बाकी था उसे परोस ही रहा था जो आपके हिला देने से हाथ से गिर गया। यह गति अपने नौकर की देख कर गुलाल साहिब चरनों पर गिरे और उनको अपना गुरू धारन किया।

बुल्ला साहिब सुरत शब्द अभ्यासी थे जिनकी ऊँची गति और भारी महिमा उनकी बानी से प्रगट होती है॥

नीचे दी हुई वंशावली से उनके गुरु घराने का हाल जान पड़ता है।

बावरी साहिब (दिल्ली)

|

वीरू साहिब

|

यारी साहिब

|

बुल्ला साहिब (भुरकुड़ा, जिला गाज़ीपुर)

|

गुलाल साहिब

|
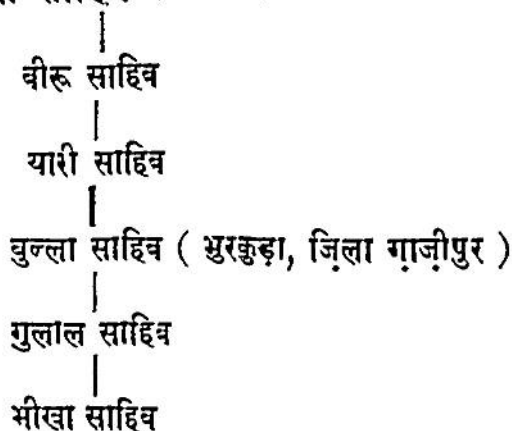
भीखा साहिब

संत महात्मा केशवदास जी का जीवन-चरित्र

परम भक्त केशवदासजी के जीवन का हाल भली-भांति नहीं पता चला है केवल इतना ही पता लगा है कि वह जाति के बनियां थे, और यारी साहिब के चेले थे बुल्ला साहिब के गुरुभाई थे जिनके पुनीत गुरु घराने में गुलाल साहिब, भीखा साहिब और पलटू साहिब सरीखे साध और संत प्रगट हुए। इस हिसाब से उन के जीवन का समय दर्मियान विक्रमी संवत् १७५० और १८२५ के ठहरता है।

इनका यह छोटा सा ग्रंथ कई बरस की खोज से मिला है। सचमुच जैसा कि इसका नाम (अमीघूँट) है इनका एक एक पद उस का अमी की घूँट है और उनके अनुपम प्रेम, गहिरे अभ्यास और ऊँची गति को लखाता है॥

संत महात्मा धरनीदास जी का जीवन-चरित्र

बाबा धरनीदास जी जाति के श्रीवास्तव कायस्थ एक बड़े महात्मा थे। इनका जन्म ज़िला छपरा (सूबा बिहार) के माँझी नामी गाँव में संवत् १७१३ विक्रमी में हुआ पर चोला छोड़ने का समय ठीक मालूम नहीं होता। माँझी का गाँव सरजू नदी के तट पर उत्तर की ओर बसा है जहाँ अब एक बड़ा पुल रेल का बन रहा है।

धरनीदास जी के पिता का नाम परसरामदास था और घर में खेती का काम होता था। धरनीदासजी आप माँझी के बाबू के दीवान थे और उनके मालिक उनकी बड़ी क़दर करते थे और पूरा भरोसा रखते थे पर उनकी अंतर गति से बेख़बर थे।

कहते हैं कि एक दिन धरनीदास जी ज़मींदारी के काम में लगे हुये थे कि अचानक पानी भरा हुआ लोटा जो पास रक्खा हुआ था उन्हों ने काग़ज़ और बस्ते पर ढलका दिया जिस पर पूछा गया कि ऐसा क्यों किया। धरनीदास जी ने कुछ जवाब न दिया; आख़िर को बाबू की अप्रसन्नता और उन्हें पागल समझ लेने पर उन्होंने कहा कि जगन्नाथजी के वस्त्र में आरती करते समय आग लग गई थी जिसे मैं ने पानी डालकर बुझाया है। इस कथन का विश्वास बाबू और उनके अधिकारियों को न हुआ और इनकी हँसी उड़ाई जिस पर धरनीदास जी बस्ता छोड़ कर यह कहते हुए चल दिये—

सोच विचार न किया। भक्तमाल के कर्ता नाभाजी ने इनके प्रेम की महिमा में यह छप्पै लिखा है—

सदरिस[1] गोपिन प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टन दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयो।
वार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो॥
भक्ति निसान बजाय के काहू तें नाहीं लजी।
लोक लाज कुल शृंखला[2] तजि मीरा गिरधर भजी॥

यह परम भक्त बाई जी जोधपुर के मेरता राठोर रतनसिंह जी की इकलौती कन्या और मेरता (मारवाड़ देश) के राव दूदा जी की पोती थीं। इनका जन्म कुड़की नामक गाँव में (जो उन गाँवों में से है जो कि उनके पिता को गुजारे के लिये दूदा जी से मिले थे) संवत् १५५५ और १५६० विक्रमी के दर्मियान हुआ और उदयपुर (मेवाड़) के ससोदिया राजकुल में महाराना सांगाजी के कुँअर भोजराज के साथ संवत १५७३ विक्रमी में व्याही गई।

इनके देहान्त के समय का पता ठीक नहीं चलता। मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ राज जोधपुर ने इनके जीवन-चरित्र में एक भाट की जुबानी लिखा कि इनका देहावसान संवत् १६०३ विक्रमी अर्थात् सन् १५४६ ईसवी में हुआ परन्तु भक्तमाल से इन दो बातों का प्रमाण पाया जाता है—(१) अकबर बादशाह तानसेन के साथ बाईजी के दर्शन को आया, (२) गुसांईं तुलसीदास जी से आपका परमार्थी पत्र व्यौहार था। समझने की बात है कि अकबर सन् १५४२ ई० में पैदा हुआ और सन् १५५६ ई० में तख्त पर बैठा और गुसांईं तुलसीदास जी सन् १५३३ ई० में (संवत १५८९ विक्रमी) में पैदा हुए तो यदि मीरा बाई के देहान्त का समय १५४६ ई० में माना जाय तो अकबर की उमर उस समय चार बरस की होती है और गुसांईं जी की चौदह बरस की, जो कि न तो अकबर को साध दर्शन की उमंग उठने की अवस्था मानी जा सकती और न गुसांई जी की भक्ति और कीर्त्ति की प्रसिद्धि का समय कहा जा सकता। इसलिये हमको भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र जी स्वर्गवासी का अनुमान कि मीरा बाई ने संवत् १६२० और १६३० विक्रमी के दर्मियान शरीर त्याग किया ठीक जान पड़ता है जैसा कि उन्होंने उदयपुर दर्बार की सम्मति से निर्णय किया था और कविवचनसुधा की एक प्रति में छापा था।

---

(१) सदृश=भाँत। (२) लोहे की जंजीर।

परम भक्त मीरा बाई

नाथ तुम जानत हो घट घट की।

मीराबाई विवाह हो जाने पर अपने पति के साथ चित्तौड़ चली गईं और उनके पति का देहावसान विवाह होने से दस बरस के भीतर हो गया परन्तु इनको इस महा विपत का विशेप दुख नहीं हुआ वरन् भगवत भजन में और अधिक चित्त को लगा कर प्रीत प्रतीत की दृढ़ता के साथ भक्ति में तत्पर हुईं और रैदासजी को अपना गुरू धारन किया। इस बात को रैदासजी की बानी में उनका जीवन चरित्र लिखने के समय हम पक्के तौर पर निश्चित नहीं कर सके थे परन्तु अब मीराबाई के कई पदों के पढ़ने से उसका विश्वास होता है—पृष्ठ १७ कड़ी ८ शब्द ४१ की पृष्ठ २१ कड़ी १ शब्द ५७ की; पृष्ठ ३१ कड़ी १४ की और पृष्ठ ३२ कड़ी ७ शब्द १ को पढ़ने से पता लगता है।

बचपन ही से मीरा बाई को परमार्थ की ओर रुचि और गिरधरलाल जी का इष्ट था। इस इष्ट का प्रत्यच्छ कारण इन की माता कही जाती हैं कि जिन से इन्हों ने पड़ोस में एक कन्या का विवाह होते देखकर पूछा था कि मेरा दुल्हा कौन है तो इनकी माता ने हँस कर गिरधरलाल की मूरत को बतलाया था। कहीं कहीं ऐसी भी कथा प्रसिद्ध है कि इस मूरत को मीराबाई के बाप के घर आने का संजोग यह हुआ कि एक बार वहाँ एक साधू ठहरा था जिसकी पूजा में यह मूरत थी। मीराबाई ने उस मूरत का नाम पूछा और फिर साधू से उसको माँगा। साधू ने देने से इनकार किया। इस पर मीराबाई ने ऐसा हठ किया कि दो तीन दिन तक भोजन ही नहीं किया तब उनके माता पिता ने उस साधू को बहुत कुछ देकर विनयपूर्वक राजी करना चाहा परन्तु साधु बोला कि हम अपने इष्टदेव से कदापि अलग न होंगे। रात को साधुजी की मूरत ने स्वप्न दिया कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो हम को उस लड़की के पास रहने दो। बेचारा साधु सवेरा होते ही गिरधरलाल जी की मूरत को मीराबाई के पिता के घर पहुँचा आया।

एक कथा के अनुसार मीराबाई पिछले जन्म में श्रीकृष्ण चन्द्र की सखियों में थीं जिनकी प्रचंड भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने वरदान दिया था कि कलयुग में हम निज रूप से तुम्हारे पति होंगे जिसका इशारा राग सावन के नवें शब्द की कड़ी नंबर २ और ३ में है इनकी शब्दावली मँगा कर पढ़ें।

जब मीराबाई विधवा हो गईं और भगवत भजन और साधु सेवा बेधड़क निरंतर करने लगीं तो उनके देवर महाराना विक्रमाजीत को (जो अपने भाई महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड़ की राजगद्दी पर बैठे थे) इनके यहाँ साधुओं की भीड़ भाड़ का लगा रहना न सुहाया और दो भरोसे की सहेली चम्पा और

चमेली नामक को इनके पास तैनात किया कि इनको समझाती और साधुओं के पास बैठने से रोकती रहें, पर मीराबाई के संग के प्रताप से थोड़े ही दिनों में उन पर भी भक्ति का रंग चढ़ गया और मीराबाई के प्रयोजन की सहायक बन गईं। यही दशा और सहेलियों और दासियों की हुई जो मीरा जी के बरजने और उन पर चौकसी रखने के काम पर नियत की गईं। अंत को राना ने यह कठिन काम अपनी सगी बहिन ऊदा बाई (मीरा बाई की ननद) को सौंपा और वह कुछ समय तक अपने कर्त्तव्य को बड़ी तत्परता से निभाती गईं। दिन में कई बार मीराबाई के महल में जाकर उनको हर प्रकार से समझौती देती और रोक टोक करती थीं। थोड़े से पद जिन में मीराबाई ने इन विरोधियों की चर्चा की है चुन कर इनके ग्रंथ में इकट्ठे कर दिये गये हैं उन्हीं में मीराबाई और ऊदा बाई का प्रश्नोत्तर भी है।

जब ऊदा बाई की समझौती का कुछ भी मीराबाई पर असर नहीं हुआ तब राना ने झुंझला कर किसी मंत्री की सलाह से मीराबाई के पास विष का कटोरा भगवत चरनामृत के नाम से भेजा। ऊदा बाई जो इस भेद को जानती थीं उन्होंने मोह बस मीराबाई से सब हाल कह दिया और उनको उसके पीने से रोकना चाहा पर मीरा बाई ने बड़ी दृढ़ता से उत्तर दिया कि जो पदार्थ भगवत चरनामृत के नाम से आया है उसका परित्याग करना भक्ति के प्रन के विरुद्ध और उसे सिर पर चढ़ा कर बड़े उत्साह के साथ पी गईं। कोई कोई लिखते हैं कि इसी जहर से मीराबाई ने प्राण त्याग किया परन्तु कई पुस्तकों और खुद मीराबाई के ऐसे पदों से जिनके छेपक होने का संदेह नहीं है यही प्रमान मिलता है कि विष का मीराबाई पर उलटे यह असर हुआ कि दूना नशा भगवत प्रेम का चढ़ गया, और कहते हैं कि उस विष का असर द्वारका में रनछोड़ जी की मूरत पर पड़ा जिसके मुँह से झाग निकलने लगा।

कथा है कि एक दिन मीराबाईजी कीर्तन कर रही थीं कि ऊदा बाई पहुँचीं तो मीराजी ने यह पद रच कर गाया "जब से मोहिं नँद नँदन दृष्टि पड़्यो माई" (देखो पद पृष्ठ २५) और कुछ ऐसी दया दृष्टि की कि ऊदाबाई के चित में इनकी महिमा समा गई और इनको गुरू धारण किया। तब एक स्त्री ने राना के सामने बीड़ा उठाया कि मैं मीराबाई को ठीक कर दूँगी पर उसके सामने आते ही मीरा जी ने कुछ ऐसी मौज की कि वह तन मन से उनकी दासी ही बन गईं और राना के महल का जाना छोड़ दिया। सच है भक्तों के दर्शन और सतसंग की ऐसी ही महिमा है जैसा कि कबीर साहिब ने कहा है—

पारस में अरु संत में, बड़ो अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करे, यह करें आप समान ॥

कहते हैं कि एक बार ऊदाबाई ने बड़ी दीनता और प्रेम से हठ किया कि हमको गिरधरलाल जी का प्रत्यक्ष दर्शन करा दो। मीराबाई ने उनका सच्चा उमंग देख कर आज्ञा की कि चम्पा चमेली आदिक सहेलियों को लेकर गिरधरलाल की पहुनाई की सामग्री तैयार करो। जब सब भोग आदिक ठीक हो गया तब मीराबाई उन लोगों के बीच में बैठ गईं और विरह और प्रेम के पद बना कर गाने लगीं। जब कई घंटे मीरा जी को कीर्तन करते बीत गये और उनकी विरह और बेकली असह हो गई तो आधी रात को श्रीकृष्ण ने साक्षात् प्रकट हो कर उनको गले लगा लिया और बोले कि तुम क्यों ऐसी अधीर हो गईं, फिर सब के सामने मीराजी के साथ भोजन करने लगे। पहरे-दारों ने किसी मनुष्य की बोली सुन कर राना को सोते से जगा कर सूचना दी कि मीराबाई के महल में कोई पुरुष आया है और उससे हँसी दिल्लगी हो रही है। राजा क्रोध में भर कर तलवार खींचे दौड़ा और महल में घुस कर इधर उधर ढूँढ़ने लगा, पर जब कोई पुरुष दिखाई न दिया तो खिसिया कर मीराबाई से पूछने लगा। मीराबाई बोलीं कि मेरे परम मित्र गिरधरलाल जी तो तुम्हारे आँखों के सामने विराजमान हैं मुझसे क्यों पूछते हो। राना ने चारों ओर दृष्टि फैला कर देखा पर सिवाय प्रेमी स्त्रियों के कोई दीख न पड़ा, थोड़ी देर पीछे पलँग पर बड़ा भयानक नरसिंहरूप दरसा जिसको देखते ही राना थरथरा कर भूमि पर गिर पड़ा, फिर सुधि सँभाल कर यह कहता हुआ भागा कि हमारे कुल देव एकलिंग जी हैं उनका इष्ट क्यों नहीं करतीं तुम्हारे इष्ट की तो बड़ी डरावनी सूरत है।

इन चमत्कारों को देखने पर भी राना ने अपनी हठ नहीं छोड़ी और एक दिन कई नागिन पिटारी में बन्द करके मीराबाई के पास पूजा के फूल और हार के नाम से भेजा। जब मीराबाई ने पिटारी को खोला तो शालिग्राम की मूरत और फूलों के सुगंधित हार निकले।

फिर भी राना उपाधि उठाता ही रहा और मीराबाई की भक्ति में विघ्न डालता रहा तब मीराबाई जी ने घबड़ा कर गुसाईं तुलसीदास जी को यह पद लिख कर भेजा—

श्री तुलसी सुख-निधान, दुख-हरन गुसाईं।
बारहि बार प्रनाम करूँ, अब हरो सोक समुदाई ॥

घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत, मोहिं देत कलेस महाई॥
बालपने तें मीरा कीन्हीं, गिरधर लाल मिताई।
सो तौ अब छूटत नहिं क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
हम को कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई॥

इस पत्र के उत्तर में गुसाईं तुलसीदास जी ने एक पद और एक सवैया लिख भेजा था—

पद—जा के प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुर तज्यो, कंत व्रत-बनिता, भये सब मंगलकारी॥
नातो नेह राम सों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान तें प्यारो।
जा सों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

सवैया—सो जननी सो पिता सोई भ्रात, सो भामिन सो सुत सो हित मेरो।
सोई सगो सो सखा सोई सेवक, सो गुर सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बताइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि गेह को देह को नेह, सनेह सों राम को होय सवेरो॥

इस उत्तर के पाने पर मीराबाई ने चित्तौड़ छोड़ने का मनसूबा पक्का किया और ऊदाबाई को आज्ञा की कि तुम यहीं बनी रहो और आप गेरुआ वस्त्र पहिन कर रात के समय चम्पा चमेली आदि सेविकों के साथ अपने मायके मेड़ता को आईं। यहाँ यह बड़े आदर सत्कार से रक्खी गईं। परन्तु साधुओं के आने जाने की थोड़ी बहुत देखभाल और मुहाँचाई यहाँ भी होती रही जिससे मीरा जी का मन इस जगह भी न लगा और कुछ दिन पीछे वृन्दावन को सिधारीं।

वृन्दावन में साधुओं और भक्तों का दर्शन करती हुई मीराबाई जीव गुसाँईं के स्थान पर उनके दर्शन को गईं परन्तु जीव गुसाँईं ने उनको बाहर ही कहला भेजा कि हम स्त्रियों से नहीं मिलते। इस पर मीरा जी ने जवाब दिया कि

वृन्दावन में मैं सब को सखी रूप जानती थी और पुरुष केवल गिरधरलाल जी को सुना था पर आज मालूम हुआ कि उनके और भी पट्टीदार हैं। इन प्रेम रस में मिले हुए बचन को सुन कर गुसाँईं जी अति लज्जित हुए और नंगे पैर बाहर आकर मीरा जी को बड़े आदर और भाव से अपने स्थान में ले गये।

कुछ समय वृन्दावन में रह कर मीराबाई द्वारका को आईं और रनछोड़ जी के दर्शन और साधुओं की सेवा में मगन रहने लगीं।

परन्तु जब से उन्होंने चित्तौड़ छोड़ा राना विक्रमाजीत पर बड़े संकट आये। गुजरात के बादशाह सलामत सुल्तान बहादुर (औवल) ने चढ़ाई करके चित्तौड़ लूट लिया और राना ने बूँदी देश को भाग कर जान बचाई। चित्तौड़ के गद्दी पर उनके छोटे भाई उदयसिंह बैठे सो वह भी विपत पर विपत ही उठाते रहे। अब इन लोगों को मीराबाई सरीखी भक्त की महिमा जान पड़ी कि भक्तों के चरन जहाँ जहाँ पधारते हैं वहाँ कष्ट और उपाधि पास नहीं फटक सकते, तब मंत्रियों की सलाह से कई प्रतिष्ठित ब्राह्मणों को इनके लिवा लाने को द्वारका भेजा गया। परन्तु मीराबाई ने राना और उनके मंत्रियों के दुर्मति के विचार से चित्तौड़ जाना अंगीकार न किया, तब ब्राह्मणों ने धरना दिया कि जब तक चित्तौड़ न चलोगी हम अन्न जल न छुएँगे। अन्त को मीराबाई हार मान कर और बेकल हो कर रनछोड़ जी से बिदा होने के बहाने उनके मंदिर में गईं और कहते हैं कि मूरत में अलोप हो गईं, केवल उनके वस्त्र का एक छोर मूरत के मुँह से पहिचान के लिये निकला रह गया। मीराबाई के मुख से अंतिम दो पद जिनको गाकर वह रनछोड़ जी में समाई यह कहे जाते हैं—

(१) हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक ॥
द्रोपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर ॥ १ ॥
भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आप सरीर ॥ २ ॥
हिरनकस्यप मारि लीन्हो धरयो नाहिन धीर ॥ ३ ॥
बूड़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ॥ ४ ॥
दास मीरा लाल गिरधर दुख जहाँ तहँ पीर ॥ ५ ॥

(२) साजन सुध ज्यों जाने त्यों लीजे हो ॥ १ ॥
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो ॥ २ ॥
दिवस न भूख न रैन नहि निद्रा यों तन पल पल छीजे हो ॥ ३ ॥
मीरा कह प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुरन नहिं कीजे हो ॥ ४ ॥

पदों और भजनों के सिवाय जो समय समय पर प्रेम के आवेश की दशा में मीराबाई के मुख से शब्द निकले और जो कहीं इकट्ठे नहीं मिलते नीचे लिखे हुए ग्रंथ भी उन्होंने रचे—(१) नरसी जी की मायरा, (२) गीतगोविन्द की टीका, (३) रामगोविन्द। कोई कहते हैं कि जयदेव जी के गीतगोविन्द की टीका भी मीराबाई ने बनाई थी।

मीराबाई के पद जैसे कोमल मधुर और प्रेम रस में पगे हैं वह देखने ही से सम्बन्ध रखते हैं परतु उनकी बानी में लोगों ने उनके पीछे जितनी मिलौनी की है और उनके नाम से अट सट पद गढ़ लिये है उतनी सिवाय कबीर साहिब के दूसरे की बानी की दुर्दशा नहीं की है, फरक इतना है कि कबीर साहिब के नाम के क्षेपक भजन उन पर कोई भारी दोष नहीं लाते परन्तु मीराबाई के अनजान प्रशंसकों ने अपनी अनसमझता से जो पद मीराबाई के नाम से बनाये हैं उनसे पूरा कलंक मीराबाई पर लगता है, क्योंकि मीराबाई के पति कुँअर भोजराज कभी राजगद्दी पर नहीं बैठे वरन अपने पिता महाराना साँगाजी के सामने ही शरीर छोड़ा और सांगा जी के पीछे मीराबाई के तीन देवर एक के बाद एक गद्दी पर बैठे। इससे विदित है कि मीराबाई राना की स्त्री नहीं कही जा सकतीं और यह असंभव है कि खुद मीराबाई जी ने अपने पदों में अपने को रानाजी की स्त्री करके लिखा हो, तो ऐसे पदों का गढ़ना जिन में राना को उनका पति बनाया है और उसके लिये मीरा जी के मुख में कटुबचन रक्खे हैं मीराबाई को स्पष्ट गाली देना और पतिद्रोही बनाना है। इस बात के मानने के लिए प्रमान है कि मीराबाई अपने पति कुँअर भोजराज के जीवन समय में उनके साथ बड़े प्यार के साथ रहीं और उनको कभी अप्रसन्न नहीं किया, यह सब रगड़े झगड़े तो जब मचे जब कि मीराबाई विधवा होकर साधु सेवा और भक्ति भाव में खुल खेलीं, तो कैसे माना जा सकता है कि उन्होंने अपने पति को निरापराध कटु बचन कहा होगा। उदाहरण के लिये कुछ ऐसी छेपक कड़ियाँ लिखी जाती हैं—

मीर महल सूँ उतरी राना पकरयो हाथ।
हथलेवा के सायने म्हाँरे और न दूजी बात॥

म्हाँरो कहो थें मानो राना बरजै मीराबाई॥
जो तुम हाथ हमारो पकरो खबरदार मन माहीं॥

देस्यूँ स्नाप साँचे मन सों जल बल भसम होइ जाई ॥
जन्म जन्म को पति परमेसुर थाँरो नहीं लुगाई ॥
थाँरो म्हाँरो झूठो सनेसो गावै मीराबाई ॥

हमको इस प्रकार के और दूसरे मिलौनी पदों के छाँट कर निकालने में कठिनता हुई है और फिर भी हम पूरे विश्वास से नहीं कह सकते कि जो कुछ हम चुन कर छाप रहे हैं वह स्वच्छ बानी मीराबाई की है। आशा है कि प्रेमी और रसिक जन हमारी भूलों को चमा की दृष्टि से देखेंगे।

यहाँ इस बात के जता देने की आवश्यकता है कि मीराबाई संस्कृत भी जानती थीं और देश देशान्तर के साधुओं के समागम से व्रजभाषा और पूरबी बोली भी अच्छी तरह समझती और लिख पढ़ सकती थीं इसलिये उनके कोई कोई शब्द जो उन बोलियों में हैं उन्हें केवल इसी कारण से छेपक न मान लेना चाहिये ॥

चरन-सेविका

परम भक्त सहजो बाई का जीवन-चरित्र

सहजो बाई जी राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थीं जो परम भक्त हुईं और संतमत के अनुसार साध गति को प्राप्त हुईं। इन का जीवन-चरित्र हम ने भक्त-माल और उस प्रकार की कई पुस्तकों में ढूंढ़ा परन्तु कहीं कुछ प्रमाणिक वृत्तान्त न पाया। उनकी बानी से इतना निश्चय होता है कि वह सम्वत् १८०० में बर्त्तमान थीं और प्रसिद्ध महात्मा चरनदासजी की गुरुमुख चेली थीं आप भी मेवात के एक ढूसर कुल में प्रगट हुईं थीं और आपके अनुयायी भारतवर्ष के देश-देशान्तर में अब तक हजारों हैं, यद्यपि उन में शब्द अभ्यासी और भेदी बिरले देख पड़ते हैं। सहजो बाई जी की बानी से चरनदासजी के जन्म का समय भादों सुदी ३ मंगलवार संवत् १७६० बिक्रमी प्रमान होता है।

सहजो बाई जी के विषय में कोई कोई चमत्कार के कौतुक प्रसिद्ध हैं परन्तु चूँकि उनका कहीं प्रमान नहीं मिलता यहाँ लिखना उचित नहीं है। उनकी गहरी गुरुभक्ति और गति उनकी अति कोमल, मधुर और हृदयवेधक बानी से जानी जा सकती है।

दयाबाई (जिन की कोमल और मधुर बानी अलग छपी है) सहजो बाई की सजाती और गुर-बहिन थीं।

परम भक्त दयाबाई जी का जीवन-चरित्र

दयाबाई जी महात्मा चरनदास जी की शिष्य और सहजोबाई जी की गुर-बहिन थीं [चरनदास जी और सहजोबाई जी की बानी यहाँ प्रकाशित हो चुकी है] यह मेवात के डेहरा नामी गाँव में पैदा हुईं जहाँ कि इनके गुरु महराज ने अवतार धरा था और फिर गुरू जी के साथ दिल्ली जाकर उनकी सेवा कमाती रहीं और वहीं चोला भी छोड़ा।

दयाबाई जी महात्मा चरनदासजी और सहजोबाई की सजाती अर्थात् ढूसर जाति की थीं और कहते हैं कि अपने गुरु के कुल ही में जन्म लिया था। विक्रमी सं० १७५० और १७७५ के दर्मियान इन का प्रकट होना पाया जाता है और सं० १८१८ में इन्होंने अपना पहिला ग्रन्थ "दया बोध" रचा था।

दूसरा ग्रंथ "विनय-मालिका" भी है जिसमें दयादास की छाप है इन्ही का बनाया हुआ कहा जाता है। इसमें सन्देह करने की कोई बात नहीं पाई जाती क्योंकि पहले तो दोनों ग्रंथों की भाषा और ढंग एक सी हैं दूसरे दोनों में महात्मा चरनदास जी ने अपने गुरु की महिमा गाई है तीसरे दयाबोध में जो निश्चय करके पूरा पूरा दयाबाई का रचा हुआ है एक जगह दयादास नाम करके छाप दी हुई है [आपकी बानी में सुमिरन के अंग की साखी नम्बर ३ देखिये] और चौथे चरनदासियों का भी ख्याल है कि "दयादास" जी कोई पृथक व्यक्ति न थीं बल्कि यह नाम दयाबाई जी का ही है। इसमें सन्देह नहीं कि "विनय-मालिका" किसी गहिरे भक्त की लिखी हुई है जो प्रेमीजनों के पढ़ने योग्य है इसलिये हम उसे भी प्रकाशित किया है।

हमने दयाबाई जी की बानी में कोमलता, मधुरता और अगाध प्रेम प्रेम-रस में पगे होने की प्रशंसा बहुत दिन हुये एक प्रेमी मित्र से सुनी थी और तभी से उसके खोज में थे पर कहीं नहीं मिली बड़े खोज के बाद मुंशी सहदेव सहायजी रईस व माफीदार मौजा तेरही जिला बांदा की सहायता से जो कि

महात्मा चरनदास जी के घर के पक्के अनुयायी थे हमको यह दुर्लभ बानी हाथ लगी जिसके लिये हम मुंशी जी को अनेक धन्यवाद देते हैं।

इनकी बानी के नोट में अर्थात् टीका में उन महात्माओं की कथा संक्षेप में लिख दी गई है जिनकी लीला का बानी में इशारा है। जिसमें वह साखियाँ भली भाँति समझ में आ जायँ। गूढ़ कड़ियों और शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है। इन कथाओं में से कितनी ऐसी हैं जो भक्तमाल में नहीं लिखी हैं और बहुत खोज के बाद हाथ आई हैं।

संत महात्मा पीपा जी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—पंद्रहवाँ शतक। जनम स्थान—गागरौनगढ़। आश्रम—भेष। गुरू—स्वामी रामानंद।

यह गागरौनगढ़ के राजा और आदि में दुर्गा के उपासक थे फिर स्वामी रामानंद के चेले हुए और राजपाट छोड़ कर साधु भेष में अपनी छोटी रानी सीता सहित गुरू के साथ द्वारिका गये। भक्तमाल की कथा के अनुसार श्रीकृष्णजी का साक्षात दर्शन पाने की अभिलाषा में पीपाजी समुद्र में कूद पड़े और सात दिन तक भगवत चरणों में रहकर बाहर निकले और वहाँ से जो छाप लाये थे वह यह कह कर पुजारियों के सपुर्द की कि जो इस छाप को लगावैगा उसे भगवान मिलेंगे। द्वारिका से लौटते हुए रास्ते में पठानों ने पीपाजी की स्त्री को सुन्दर देख कर छीन लेना चाहा परन्तु भगवान ने स्वयं रक्षा की।

॥ घट मठ ॥

काया देवा काया देवल, काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैवेदा, काया पूजों पाती॥ १ ॥
काया बहु खँड खोजते, नव निद्धी पाई।
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो, राम की दुहाई॥ २ ॥
जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे, जो खोजै सो पावै।
पीपा प्रनवै परम तत्त्व ही, सतगुरु होय लखावै॥ ३ ॥

संत महात्मा नामदेवजी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—पंद्रहवें शतक का दूसरा हिस्सा। कविता काल—१४८० जन्म और सतसंग स्थान—पांडरपुर। जाति और आश्रम—छीपी, गृहस्थ गुरू—ज्ञानदेवजी।

भक्तमाल में इनका जन्म एक बाल-विधवा के गर्भ से बिना पुरुष प्रसंग के ईश्वरेच्छा से होना लिखा है जैसा कि हज़रत ईसा का क्वारी कन्या के उदर से हुआ था। इनकी प्रचंड भक्ति और बाल अवस्था ही से दृढ़ विश्वास की बहुत सी कथाओं में तीन दिन उपास करके ठाकुर जी को दूध पिलाने की कथा प्रसिद्ध है।

संत महात्मा सदनाजी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—पंद्रहवें शतक का पिछला हिस्सा।

जाति और आश्रम—कसाई, भेष।

यह यद्यपि जाति के कसाई थे। परंतु जीवहिंसा नहीं करते थे मॉस इकट्ठा मोल लेकर फुटकल बेचते थे, बटखरे की जगह शालग्राम की एक बटिया थी उसी से तोला करते थे चाहे कोई पावभर ले चाहे पाँच सेर। एक दिन एक वैष्णव ने उस बटिया में शालग्राम के पूरे आकार देखकर उन से माँगा उन्हों ने तुर्त दे दिया। वैष्णव ने उसे घर पर लाकर और पंचामृत से स्नान करा कर सिंहासन पर विराजमान किया और उत्तम भोग आगे रक्खा पर रात को उसे स्वप्न हुआ कि हमें तू हमारे उसी परम भक्त के घर पहुँचादे जहाँ तराजू पर बैठ कर हमको पालना झूलने का आनंद आता है। वैष्णव ने सदनाजी को सब हाल आ सुनाया और बटिया लौटादी। सदनाजी ने उसी दिन से वैराग ले लिया और उस बटिया को सिर पर रख कर जगन्नाथपुरी को चले गये। रास्ते में एक स्त्री के मोहित होने और इनके साथ भाग निकलने के अभिप्राय से अपने पति का सिर काट डालने और फिर सदनाजी के इनकार पर हाकिम के सामने उन पर अपने पति के घात का झूठा दोष लगाने और सदनाजी के उस दोष को स्वीकार कर लेने पर उनके दोनों हाथों के काटे जाने और जगन्नाथजी के सन्मुख होते ही हाथ ज्यों के त्यों निकल आने की कथा भक्तमाल में लिखी है।

॥ विनय ॥

नृप कन्या के कारने, एक भयो भेष धारी।
कामारथी सुवारथी, वा की पैज[1] सँवारी॥ १॥
तव गुन कहा जगत-गुरा, जो कर्म न नासै।
सिंह सरन कत जाइये, जो जंबुक[2] ग्रासै॥ २॥
एक बूँद जल कारने, चातक दुख पावै।
प्रान गये सागर मिले, पुनि काम न आवै॥ ३॥

प्रान जो थाके थिर नहीं, कैसे बिरमावो।
बूढ़ि मुए नौका मिलै, कहु काहि चढ़ावो॥ ४॥
मैं नाहीं कछु हौं नहीं, कछु आहि न मोरा।
औसर लज्जा राख लेहु, सदना जन तोरा॥ ५॥

संत महात्मा सूरदासजी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—अनुमान १५४० से १६२० तक। जन्म स्थान—सीही गाँव दिल्ली के पास है। जाति और आश्रम—सारस्वत ब्राह्मण, भेष। गुरु—वल्लभाचार्य्य महाप्रभु।

यह एक गहरे कृष्णभक्त और साध शिरोमणि १६ वें शतक में हुए जो ३१ बरस तक गु० तुलसीदासजी के समकालीन थे। इनको उद्धवजी का अवतार कहते हैं और यह बाल-साध थे। आठ बरस की अवस्था में अपने माता पिता के साथ मथुरा को गये और फिर वहीं एक साधू के पास रह गये। मथुरा से वह गऊघाट आये जो आगरा और मथुरा के बीच में है, यहाँ वल्लभाचार्य्य महाप्रभु के शिष्य हुए और उनके साथ श्रीनाथद्वारा को गये और वहीं रह कर अस्सी बरस की अवस्था में शरीर त्याग किया। बीच बीच में और स्थानों की भी यात्रा करते रहे और एक रामत में गु० तुलसीदासजी से भेंट हुई और कुछ दिनों तक दोनों का संग रहा। कितने लोग इनको जन्म का अंधा बतलाते हैं परन्तु इनकी कविता की अनेक दृष्टान्तों और बर्णनों से जान पड़ता है कि उनकी आखें पीछे से गईं थीं। कहते हैं कि एक बार एक सुन्दरी स्त्री को देख कर वह मोह गये जिस पर उन्हें ऐसी ग्लानि आई कि अपनी आँखों का दोष समझ कर उनको फोड़ डाला। सूरदास जी ने तीन ग्रन्थ रचे हैं—सूरसागर, सूरावली और साहित्य-लहरी (दृष्टकूट)। कृष्णभक्तों का विश्वास है कि इन्होंने प्रण किया था कि सवालाख पद लिखेंगे परन्तु केवल ७५००० तक बनाये थे कि चोला छूट गया फिर इनके पीछे श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने भक्त के वचन का पालन करने को शेष ५०००० बनाकर सवालाख की संख्या पूरी करदी, इन पदों में सूरस्याम की छाप है। शरीर त्यागते समय आप ने प्रेम में गद्गद हो कर यह पद कहा था—

"खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि उलटि ताटंक[1] फँदाते॥
सूरदास अंजन गुन अटके, नातरु अब उड़ि जाते॥"

---

(१) तटक = नदी का किनारा, तटाक = तालाव।

संत महात्मा स्वामी हरिदासजी का जीवन-चरित्र

यह एक भारी कृष्ण भक्त हुए जो सोल्हवें शतक के पिछले हिस्से से सत्रहवें शतक के अगले हिस्से तक बिराजमान थे। ललिता सखी के अवतार समझे जाते हैं। गान विद्या में यह बड़े निपुण प्रसिद्ध तानसेन के गुरू थे। अकबर बादशाह जो इनका समकालीन था एक बार तानसेन के साथ इनके दर्शन को आया था। इनके कई एक ग्रंथ हैं जिनमें से भरथरी-वैराग्य और रस के पद प्रसिद्ध हैं। भरथरी-वैराग्य संवत् १६०७ में और पद १६१७ में बनाये गये।

(१)

गायो न गोपाल मन लाइ के निवारि लाज।
पायो न प्रसाद साधु मन्डली में जाइ के॥ १ ॥
धायो न धमक वृन्दाविपिन की कुंजन में।
रह्यो न सरन जाइ बिट्ठलेसराइ के॥ २ ॥
नाथ जू न देखि छक्यो छिनहूँ छबीली छाँव।
सिंह पौरि पर्यो नाहिं सीसहूँ नवाइ के॥ ३ ॥
कहै हरिदास तोहिं लाज हूँ न आवै नेक।
जनम गँवाये ना खमायो कछु आइ के॥ ४ ॥

गहो मन, सब रस को रस सार॥ टेक॥
लोक वेद कुल करमै तजिये, भजिये नित्य बिहार॥ १ ॥
गृह कामिनि कचन धन त्यागो, सुमिरो स्याम उदार॥ २ ॥
गहि हरिदास रीति सन्तन की, गादी को अधिकार॥ ३ ॥

संत महात्मा नरसी मेहताजी का जीवन-चरित

जीवन समय—सत्रहवाँ शतक। रचना काल—१६३०। जन्म स्थान—जूनागढ़ [गुजरात]। जाति और आश्रम—गुजराती ब्राह्मण, गृहस्थ।

इनके माँ बाप बचपन ही में मर गये थे इसलिये भाई भावज के साथ रहने लगे। फिर भावज के कुटिल वचन के कारण उसका घर भी छोड़ दिया और एक शिवाले में सात दिन तक भूखे प्यासे पड़े रहे; शिवजी की कृपा से वृंदावन आकर साक्षात दर्शन श्रीकृष्ण का पाया। वृंदावन से जूनागढ़ लौट आये और वहाँ एक घर अलग बनाकर अपना ब्याह कर लिया जिससे एक बेटा और दो बेटी उत्पन्न हुए। इनकी ईश्वर-भक्ति जगत विख्यात है और इनकी हुँडी की

कथा जो साधुओं की एक जमात के आग्रह बस इन्हों ने साँवल साह पर द्वारका को लिख दी और जिसका दाम श्रीकृष्ण ने आप साहूकार का रूप धारण करके चुकाया भक्तमाल में दी है।

(१)

म्हाँने पार उतारो जी, थाँने निज भक्तन की आन।
हमने अवगुन नेक न चितवो, अपनो ही करि जान॥ १॥
काम क्रोध मद लोभ मोह बस, भूल्यो पद निर्वान।
अब तो सरन गही चरनन की, मत दीजो मोहिं जान॥ २॥
लख चौरासी भरमत भरमत, नेक न परी पिछान।
भवसागर में बह्यो जात हौं, रखिये स्याम सुजान॥ ३॥
हौं तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमिर्‌यो तेरो नाम।
नरसी के प्रभु अधम-उधारन, गावत वेद पुरान॥ ४॥

(२)

कहाँ लगाई एती देर, अरे अरे साँवरे॥ टेक॥
हौं गुजराती सिव को उपासो, पूजौं साँझ सवेरे॥ १॥
भक्ति मर्म को सार न जानौं, हाँसी कराई मेरी ढ़ेर॥ २॥
ऊँचे चढ़ि के टेर सुनाऊँ, अब सुनिये म्हारी टेर॥ ३॥
क्या कहिं काज सँवारे भक्तन के, क्या निद्रा ने लिये घेर॥ ४॥
नरसी के प्रभु अधम-उधारन, राखिये अब की बेर॥ ५॥

संत महात्मा गुसाईं तुलसीदास जी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—१५८९ से १६८० तक।

जन्म स्थान—राजापुर गाँव परगना मऊ ज़िला बाँदा।

सतसंग स्थान—काशी। जाति और आश्रम—कान्यकुब्ज ब्राह्मण, भेष।

गुरु—नरहरिदासजी जो स्वामी रामानन्द के शिष्य थे।

इनको बाल्मीकि जी का अवतार कहते हैं और इसमें संदेह नहीं कि इनकी हिन्दी भाषा की रामायण बाल्मीकि जी की संस्कृत रामायण से सुंदरता में कम नहीं वरन इससे सर्व साधारण का कहीं बढ़कर उपकार हुआ है। यह ३१ बरस तक सूरदासजी के समकालीन थे और नाभा जी (भक्त-माल के कर्त्ता) तो इनके परम मित्र और सतसंगी थे। एक बार बाबा मलूकदास से भी मेला हुआ था। गुसाईं जी मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी, सोरों आदि

तीर्थों में घूमते रहे परन्तु मुख्य स्थान इनके सतसंग का काशी था और वहीं ९१ बरस की अवस्था में अस्सी घाट पर चोला छोड़ा। कथा है कि युवा अवस्था में इनकी गाढ़ी प्रीति अपनी स्त्री के साथ थी, एक दिन वह मायके गई थीं सो आप उसके वियोग में ऐसे विकल हुए कि बरसात की रात में बढ़ी हुई नदी को एक मुर्दे पर बैठ कर पार किया और एक भारी साँप को जो उनकी स्त्री के कोठे से लटकता था पकड़ कर चढ़ गये और स्त्री के सामने जा खड़े हुए। स्त्री बोली कि जो कहीं तुम्हारा ऐसा प्रेम राम के साथ होता तो मट्टी से सोना बन जाते। पूर्व संस्कार वश यह बचन गुसाईं जी के हृदय में धस गया और उसी दम राम की खोज में घरबार त्याग कर निकल पड़े। इनके ग्रंथों में रामायण और बिनय पत्रिका जक्त-प्रसिद्ध हैं जिनकी महिमा भारतवर्ष के गाँव गाँव में और फरंगिस्तान तथा अमरीका तक फैली हुई है।

संत महात्मा नाभाजी का जीवन-चरित्र

इनका जीवन समय सत्रहवाँ शतक था और इनका देहान्त होना सं० १७०० में इनके शिष्य प्रियादासजी ने लिखा है जिन्हों ने अपने गुरू की आज्ञानुसार उनके मुख्य ग्रन्थ भक्तमाल छंदबंद की टीका उनके देहान्त होने के पीछे बनाई, परंतु मिश्र-बंधु विनोद में सं० १७२० के लगभग इनका मृत्यु-काल सिद्ध किया गया है। इनकी जाति के विषय में झगड़ा है, प्रायः लोग डोम बतलाते हैं। इनके शिष्य प्रियादासजी ने अपनी टीका में इन्हें हनुमान-वंशी लिखा है और मारवाड़ी भाषा में डोम शब्द का प्रयोजन हनुमान है। दूसरे टीकाकार ने ऐसा लिखा है कि वैश्नवों की जाति पाँति वक्तव्य नहीं है। नाभाजी अग्रदास के शिष्य और गुसाईं तुलसीदासजी के बड़े मित्र थे।

॥ शब्द ॥

नाभा नभ खेला कँवल केल रस सैला ॥ टेक ॥
दरपन नैन सैन मन माँजा, लाजा अलख अकेला ॥ १ ॥
पत्त पर दल दल ऊपर दामिनि, जोत में होत उजेला ॥ २ ॥
अंडा पार सार लख सूरत, सुन्नी सुन्न सुहेला ॥ ३ ॥
चढ़ गइ धाय जाय गढ़ ऊपर, सबद सुरत भया मेला ॥ ४ ॥
यह सब खेल अलेख अमेला, सिंध नीर नद मेला ॥ ५ ॥
जल जलधार सार पद जैसे, नहीं गुरू नहिं चेला ॥ ६ ॥
नाभा नैन अैन अदर के, खुल गये निरख निहाला ॥ ७ ॥
संत उचिष्ट वार मन मेला, दुर्लभ दीन दुहेला ॥ ८ ॥

संत महात्मा बुल्लेशाह जी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—१७६० के लगभग से १८१० तक। जन्म स्थान—रूम। सतसंग स्थान—मौ० क़सूर, ज़ि० लाहौर। जाति और आश्रम—सैयद, भेष। गुरू—शाह इनायत।

यह एक नामी सूफी और भक्त पंजाब में गुरु नानक के अनुमान डेढ़ सौ बरस पीछे प्रगट हुए। इनके जन्म का स्थान रूम था पर दस बरस की ही अवस्था में पंजाब आ गये थे। अनुमान पचास बरस की उमर में देहान्त कसूर के गाँव में जहाँ इनकी गद्दी और समाधि मौजूद है सन ११७१ हिजरी= सम्वत् १८१० विक्रमी में हुआ। इन्होंने अपना ब्याह नहीं किया और सदा साधु के बाने में रहे। कुरान और शरअ् का खुल्लम खुल्ला खंडन करने के कारण मुसलमान मौलवियों और मुल्लाओं के साथ इनका भारी झगड़ा रहा।

(इनकी बानी संतबानी संग्रह भाग १ में पढ़िये)

संत महात्मा काष्ठ जिह्वास्वामी (देव) जी का जीवन-चरित्र

जीवन समय—सं० १८३४ से १६०६ तक। जन्म स्थान—काशी। सतसंग स्थान—काशी और रामनगर। जाति—सरजूपारी ब्राह्मण भीटी मिश्र शाखा के।

इनका विवाह काशी ही में हो गया था परन्तु वैराग्य उपजने पर गृहस्थ आश्रम को त्याग कर सन्यास ले लिया और 'देवतीर्थ स्वामी' नाम हुआ।

आप बड़े पंडित थे और एक बार अपने गुरू से विवाद किया जिसके प्रायश्चित में अपनी जीभ पर काठ की खोल चढ़ा कर सदा को बोलना बंद कर दिया और तख़्ती पर लिख कर बातचीत करने लगे। यह केवल साग पात खाते थे। महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायणसिंह काशिराज के आप दीक्षा-गुरु थे। लगभग ७५ बरस की अवस्था में कुआर वदी १२ सम्वत् १६०६ को चोला छोड़ा। इन्होंने विनयामृत और कई छोटे छोटे ग्रंथ लिखे हैं। जैसे

॥ प्रेम ॥

(१)

बसो यह सिय रघुबर को ध्यान।
स्यामल गौर किसोर बयस[1] दोउ, जे जानहुँ की जान॥ १॥

---

(१) युवा अवस्था।

लटकत लट लहरत स्रुति कुन्डल, गहनन की झमकान।
आपुस में हँसि हँसि कै दोऊ, खात खियावत पान॥ २ ॥
जहँ वसंत नित महमह महकत, लहरत लता वितान[1]।
विहरत दोउ तेहि सुमन बाग में, अलि कोकिल कर गान॥ ३ ॥
ओहि रहस्य सुख रस को कैसे, जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जहँ मति पहुँचत नहिं, थकि गये वेद पुरान॥ ४ ॥

(२)

चीखि चीखि चसकन से राम सुधा पीजिये।
राम चरित सागर में रोम रोम भींजिये॥ १ ॥
राग द्वेस जग बढ़ाइ काहे को छीजिये।
परदुक्खन देखत हीं आप सों पसीजिये॥ २ ॥
तोरि तारि खैंचि खाँचि स्रुति को नहिं गींजिये।
जा में रस बनो रहै वही अर्थ कीजिये॥ ३ ॥
वहुत काल सन्तन के दोऊ चरन मींजिये।
देव द्रष्टि पाइ विमल जुग जुग लौं जीजिये॥ ४ ॥

॥ विनय ॥

मैं तो मन ही मन पछिताय रह्यौ॥ टेक॥
साज समाज सरस पायहु के, कर से रतन गँवाय रह्यौ॥ १ ॥
यह नर तन यह काया उत्तम, बिन सतसंग नसाय रह्यौ॥ २ ॥
पढ़यो गुन्यौ सिखयौ औरन को, आप बिषय लपटाय रह्यौ॥ ३ ॥
चित्र विचित्र करम को धागा, जनम जनम अरुझाय रह्यौ॥ ४ ॥
काहे को कबहूँ यह सुरझहि, दिन दिन अधिक फँसाय रह्यौ॥ ५ ॥
सदा मुक्ति को ज्ञान अगम लखि, गले हार पहिराय रह्यौ॥ ६ ॥
जिव को सूत सिवहि से अरुझै, विनती देव सुनाय रह्यौ॥ ७ ॥

(१) मंडप।
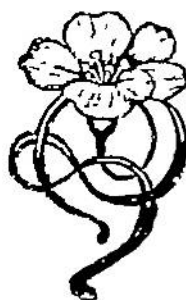
संतबानी पुस्तक-माला पर दो शब्द

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जगत-प्रसिद्ध महात्माओं की ानी और उपदेश का जिनका लोप होता जाता है बचा लेने का है। जितनी बानियाँ मने छापी हैं उनमें से विशेष तो पहिले कहीं छपी ही नहीं थी और जो छपी भी थी सो ाय: ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या छेपक और त्रुटि से भरी हुई कि उन से ूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता था।

हमने देस देसान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ हस्तलिखित दुर्लभ न्थ या फुटकल शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नक़ल कराके मँगवाये। भरसक े पूरे ग्रन्थ छापे गये हैं और फुटकल शब्दों की हालत में सर्व साधारण के उपकारक द चुन लिये हैं, प्राय: कोई पुस्तक बिना दो लिपियों का मुकाबिला किये और ठीक ीति से शोधे नहीं छापी गई है, और कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत ुट नोट में दे दिये गये हैं। जिन महात्मा की बानी है उनका जीवन चरित्र भी साथ ही में ापा गया है। और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उनके ृत्तान्त और कौतुक संक्षेप से फ़ुट नोट में लिख दिये गये हैं।

दो अन्तिम पुस्तकें इस पुस्तक-माला की अर्थात् संतबानी संग्रह भाग १ साखी) और भाग २ (शब्द) छप चुकी हैं, जिनका नमूना देखकर महामहोपाध्याय ी पंडित सुधाकर द्विवेदी वैकुंठ-वासी ने गद्गद होकर कहा था—"न भूतो न विष्यति"।

एक अनूठी और अद्वितीय पुस्तक महात्माओं और बुद्धिमानों के बचनों की "लोक परलोक हितकारी" नाम की गद्य में सन् १९१६ में छपी है, जिसके विषय में ीमान् महाराजा काशी नरेश ने लिखा है—"वह उपकारी शिक्षाओं का अचरजी ंग्रह है; जो सोने के मोल सस्ता है।"

पाठक महाशयों की सेवा में प्रार्थना है कि इस पुस्तकमाला के जो दोष उनको ृष्टि में आवें उन्हें कृपा करके लिख भेजें जिससे वह दूसरे छापे में दूर कर िये जावें।

हिन्दी में और भी अनूठी पुस्तकें छपी हैं जिनमें प्रेम कहानियों के द्वारा शिक्षायें ी गई हैं। उनका नाम और दाम सूची में छपा है। कुछ पुस्तकों की सूची नीचे लिखे ते से हमसे मँगाइए या पुस्तक के तीसरे और चौथे पृष्ठ पर देखें।

मैनेजर—संतबानी पुस्तकमाला कार्या

बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद—२